# नाना फड़नवीस

तीन अंकों में भारतीय संस्कृति एवं
राजनीति का एक चिर-स्मरणीय चित्र

लेखक
रामकुमार वर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

## पात्र परिचय

(प्रवेशानुसार)

### पुरुष

| | |
|---|---|
| बालाजी बाजीराव | महाराष्ट्र के पेशवा |
| जनकोजी | महाराष्ट्र के एक सेनापति |
| भास्करराव | पेशवा के सामन्त |
| राजगुरु | पेशवा के आध्यात्मिक गुरु |
| नाना फड़नवीस | नाटक के नायक और पेशवा के आय-व्यय-लेखक |
| रामशास्त्री | महाराष्ट्र के प्रसिद्ध न्यायाधीश |
| नारायणराव | सबसे छोटे पेशवा, माधवराव के भाई |
| माधवराव | महाराष्ट्र के पेशवा |
| हरिपंत | महाराष्ट्र के सेनापति |
| रघुनाथराव (राघोबा) | पेशवा के विद्रोही चाचा |
| महादेव<br>मामा | रघुनाथ राव के गुप्तचर |

### स्त्री

| | |
|---|---|
| गंगाबाई | पेशवा नारायणराव की पत्नी |
| आनन्दीबाई | रघुनाथराव (राघोबा) की पत्नी |
| पार्वतीबाई | सदाशिवराव भाऊ की पत्नी |
| सौदामिनी | गंगाबाई की परिचारिका |

स्त्री, द्वारपाल, क़ासिद, सैनिक, कीर्तनकार आदि ।

प्रथम अंक

# पानीपत की हार

दक्षिण भारत का मानचित्र
सन् १७६१ - १७७३
सूरत
नासिक
बंगलौर
कावेरी नदी
कालीकट
लंका
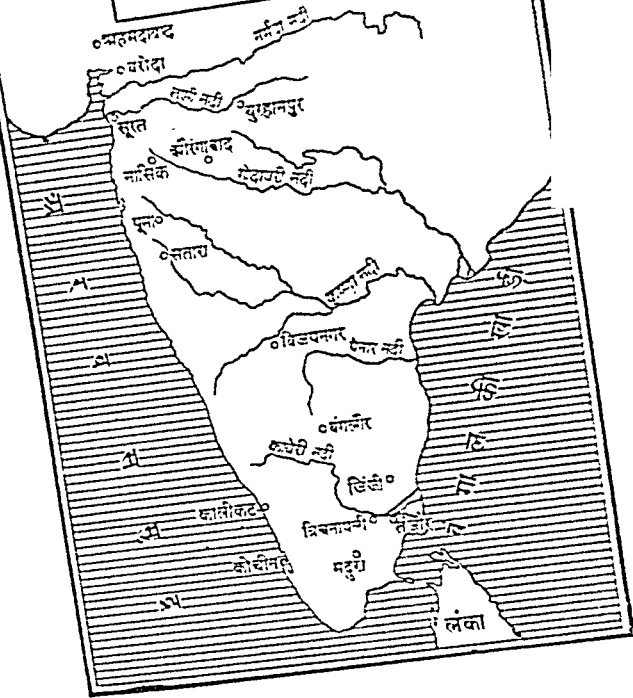
अपनी जननी
श्रीमती राजरानी देवी
को
पवित्र स्मृति में

• भूमिका

नाना फड़नवीस भारतीय इतिहास में एक स्मरणीय नाम है। राजनीति के क्षेत्र में नाना फड़नवीस ने जिस अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है, वह बड़े से बड़े प्रभावशाली नरेशों में नहीं थी। अठारहवीं शताब्दी का भारतीय इतिहास नाना फड़नवीस की विचक्षण बुद्धि से ही अनुशासित हुआ है। यह दुर्भाग्य की बात थी कि नाना को अधिक आयु नहीं मिली। यदि वे दीर्घजीवी होते तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों की कूटनीति पनपने न पाती और जिस प्रकार इस देश में व्यापार करने की इच्छा से आए हुए फ्रांसीसी और पुर्तगाली इस भूमि पर अपने पैर नहीं जमा सके, उसी भाँति अंग्रेज भी इस देश से हट गए होते और भारत को विदेशी शासन से मुक्ति मिल गई होती। आज देश का इतिहास ही दूसरा होता।

भट और भानु उपनाम के दो ब्राह्मण गृहस्थ सज्जन कोंकण से सतारा के महाराज शाहू के दरबार में आये। अपनी योग्यता से भट को पेशवाई प्राप्त हुई और भानु को आय-व्यय-लेखन अथवा फड़नवीसी। पहले पेशवा थे बालाजी विश्वनाथ और पहले फड़नवीस थे हरि महादेव। दोनों में बड़ी ही आत्मीयता के सम्बन्ध थे और परिणामस्वरूप पेशवाई और फड़नवीसी उत्तराधिकार के रूप में दोनों के वंशों में रही। बालाजी विश्वनाथ के बाद बाजीराव पेशवा हुए। हरि महादेव के अनन्तर क्रम से रामाजी महादेव और बालाजी महादेव ने फड़नवीसी की। बाजीराव के कार्य-काल में अन्तिम फड़नवीस रामाजी महादेव थे। वे भी कुछ काल में बैकुंठवासी हुए। हरि महादेव पुत्र-हीन थे। रामाजी महादेव और बालाजी महादेव के एक-एक पुत्र थे। रामाजी के पुत्र का नाम बाबूराव और बालाजी के पुत्र का नाम जनार्दन था। बड़े होने पर ये दोनों ही फड़नवीस हुए। जनार्दन पन्त के पुत्र बालाजी हुए और यही बालाजी जनार्दन भानु नाना फड़नवीस के नाम से विख्यात हुए। यही महाराष्ट्र के धर्मनिष्ठ राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने हिन्दू-पद-पादशाही की दुदुंभी बजाकर अंग्रेज,

फ्रांसीसी, मुग़ल, हैदर, टीपू सुलतान और निज़ाम की समस्त कूटनीति और षड्यंत्रों को नष्ट कर राष्ट्रीयता की नींव मजबूत की। ऐसे महापुरुष से महाराष्ट्र ही नहीं, समस्त भारत गौरवान्वित हुआ।

नाना फड़नवीस का जन्म सतारा में २४ फ़रवरी सन् १७४२ को जनार्दन वल्लाल भानु की पत्नी सौभाग्यवती रखमाबाई से दस बजे रात में हुआ। नाना के सभी अंग्रेज छोटी आयु में ही चल बसे थे, अतः नाना की शिक्षा-दीक्षा का समस्त भार पेशवा ने ही बड़े स्नेह और वात्सल्य से वहन किया। उस समय की शिक्षा भी विशेष नहीं थी। सामान्य-सा पठन-पाठन और सांसारिक व्यवहार और समाज-शिक्षा यही पर्याप्त थी। किन्तु कुशाग्र-बुद्धि नाना ने इतनी शिक्षा से ही आश्चर्यजनक प्रतिभा का विकास किया।

**बाल्यकाल**

शैशव से ही नाना बड़े सरल स्वभाव के थे। उच्छृंखलता अथवा छल-कपट की ओर उनकी किञ्चित् भी प्रवृत्ति नहीं थी। वे एकांत में चुपचाप बैठे रहते थे। वे न किसी के लेने में, न देने में,—सबसे अलग, उनके शैशव का समय व्यतीत हो रहा था। देवता की मूर्ति की ओर एकटक देखना अथवा देव-मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चा की विधियों में रुचि लेना उनके स्वभाव का अंग बन गया था। दूसरे का उपकार करने की भावना सदैव उनके हृदय में उत्पन्न होती। युद्ध के नाम से उन्हें घृणा होती, शस्त्र शिक्षा को वे क्रूरता का अभ्यास करना समझते थे, सेना का शब्द सुनकर उनके मन में अवसाद छा जाता था।

जब पानीपत के तीसरे युद्ध में सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में मराठों की सेना चली तो उनके साथ नाना भी चले, किन्तु वे पानीपत के युद्ध में भाग लेने के लिए नहीं, वरन् मार्ग में तीर्थ-यात्रा करने की सुविधा से साथ हो गये थे। उनके हृदय में बड़ी अभिलाषा थी कि वे काशी और प्रयाग में पवित्र भागीरथी में स्नान करें और शंकर या बिन्दुमाधव के दर्शन करें। वे वृन्दावन जाना चाहते थे जिससे वे कृष्ण की लीला-भूमि अपनी आँखों से देख सकें। यमुना की उस बालुका-राशि में वे लेट सकें जहाँ श्रीकृष्ण ने शरद्-पूर्णिमा में रास किया था। वे उस कदम्ब की छाया में बैठ सकें जिस पर चढ़ कर श्रीकृष्ण ने बाँसुरी में स्वर

भरा था। नाना ने अपने आत्म-चरित मे इसका संकेत किया है। इस भाँति युद्ध मे कौशल दिखलाने के लिए नही अथवा विपक्षियों को मौत के घाट उतारने के लिए नही, वरन् देवताओं के दर्शन करने के लिए, किसी तीर्थ-स्थान में स्नान करने के लिए और इस विचार से कि सेना के साथ रहने मे उन्हें मार्ग मे किसी डाकू या लुटेरे का भय नही रहेगा, वे उत्साह से पानीपत की ओर जाने वाली सेना के साथ चल पड़े थे। यही नही, वे अपने साथ अपनी माता और पत्नी को भी ले गये थे।

**विवाह और उसके बाद**

दस वर्ष की अवस्था में ही नाना का विवाह सदाशिव रघुनाथ गदरे की कन्या यशोदाबाई से पूना मे हुआ। १४ वर्ष की अवस्था मे वे संयोग से एक घोड़े पर से गिर पड़े और उन्हें भारी चोट लगी। बड़ी कठिनाई से वे बच सके। जब नाना पन्द्रह वर्ष के हुए, उस समय उनके पिता कैलासवासी हुए और उन्होंने उत्तराधिकार में फड़नवीसी प्राप्त की।

पेशवा बालाजी बाजीराव के हृदय मे नाना के प्रति बड़ा स्नेह था। जब नाना के पिता की मृत्यु हुई तो पेशवा का हृदय नाना के प्रति और भी द्रवित होकर स्नेहशील हो गया। नाना का मन बहलाने के लिए पेशवा बालाजी बाजीराव उन्हें अपने साथ श्रीरंगपट्टम ले गये।

श्रीरंगपट्टम से आने के उपरान्त नाना को एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई किन्तु कुछ महीनों के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। नाना का स्वास्थ्य भी इस बीच में खराब हो गया था, अतः वे गोदावरी नदी के किनारे चले गये और वहाँ वे अनेक प्रकार के अनुष्ठान करते रहे। गोदावरी के तट पर उनके हृदय को इतनी शान्ति मिली और उनके हृदय मे पवित्रता की प्रेरणा इस सीमा तक बढ़ी कि वे भागीरथी की पुण्य धारा के संस्पर्श की कामना नही रोक सके और काशी जाने का अवसर खोजने लगे। उसी समय पेशवा के भाई सदाशिवराव भाऊ ने अफग़ानियों को दंड देने के लिए पानीपत की ओर स-सैन्य जाने की आज्ञा पेशवा बालाजी बाजीराव से प्राप्त की और वे भारी सेना लेकर पानीपत कि ओर चल पड़े। नाना फड़नवीस के लिए काशी जाने का यह अवसर अनायास ही

हाथ आ गया और वे सदाशिवराव भाऊ के साथ पानीपत की ओर जाने का प्रबंध करने लगे। उन्होंने सोचा कि सेना के मार्ग में पड़ते हुए अन्य तीर्थों के देखने का अवसर भी मिल जायगा और मार्ग में किसी प्रकार की असुविधा या आशंका भी नहीं रहेगी। उन्होंने पेशवा की आज्ञा ली और वे अपनी पत्नी और माता को लेकर सेना के साथ चल पड़े।

अपनी यात्रा में वे यमुना के किनारे आये और उन्होंने 'कालियादह' के दर्शन किये, कदम्ब वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम किया। उन्होंने अपनी तीर्थयात्रा का विवरण अपनी आत्म-कथा में विस्तार से दिया है, जो इस पुस्तक के परिशिष्ट में प्रस्तुत की गई है।

सन् १७६१ में पानीपत का युद्ध हुआ और उसमें सदाशिवराव भाऊ की अदूरदर्शिता, हठवादिता और अस्थिरता के कारण बहुत बड़ी सेना के होते हुए भी मराठों की हार हुई और महाराष्ट्र का मध्याह्न-सूर्य अस्तोन्मुख हुआ। युद्ध-क्षेत्र की ओर प्रयाण करते समय इन्दौर-नरेश होलकर और भरतपुर-नरेश सूर्यमल्ल का अपमान कर देने से सदाशिवराव भाऊ का दो शक्तिशाली सहायकों से वंचित हो जाना उनकी रण-नीति की अनभिज्ञता ही सूचित करता है। केवल अपनी ही अहमन्यता के बल पर युद्ध में विजय पाना कदाचित् ही संभव होता है। इस पानीपत के युद्ध में न जाने कितने महाराष्ट्र-वीर रणभूमि की बलि हुए। शेष जो बच गये थे, वे अनजान रास्तों से भाग कर अपने-अपने स्थान पर पहुँचे। इस पराजय का सबसे विषम परिणाम यह हुआ कि पेशवा बालाजी बाजीराव--जिनका स्वास्थ्य गिर रहा था---और भी मलीन और अस्वस्थ हो गये और उनकी मृत्यु शीघ्र ही हो गई। उस समय नाना फड़नवीस छोटे थे और राजनीति में उनका कोई स्थान नहीं था।

पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा हुए और उन्होंने अत्यन्त योग्यता से महाराष्ट्र की बागडोर सम्हाली। उन्होंने नाना फड़नवीस को मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया और नाना ने अपने दायित्व को अभूतपूर्व राजनीतिक दृष्टि से सम्हाला। बालाजी बाजीराव

के भाई रघुनाथराव (राघोबा) में राज्य-तृष्णा चरम सीमा की थी। जब तक बालाजी बाजीराव जीवित रहे तब तक रघुनाथराव अपनी दूषित मनोवृत्ति में कृतकार्य नहीं हो सके, किन्तु बालाजी बाजीराव की मृत्यु होने पर रघुनाथराव अपनी महत्वाकांक्षाओं के सुनहले स्वप्न देखने लगे। वे अब महाराष्ट्र में *विद्रोह करने के लिए भी उद्यत हो गये और जिन साधनों से उनकी इच्छा-पूर्ति* हो सकती थी, उन साधनों को स्वीकार करने में उन्हें किञ्चित्-मात्र भी संकोच न हुआ, भले ही वे साधन विपक्षियों के द्वारा प्रस्तुत किये गये हों।

महाराष्ट्र के विपक्षियों में इस समय ईस्ट इंडिया के अंग्रेज प्रमुख थे। इस बात का सतत प्रयत्न करते रहे कि महाराष्ट्र में गृह-विद्रोह कराने के लिए रघुनाथराव (राघोबा) को अपनी ओर मिला लिया जाय और दक्षिण की अन्य दो शक्तियों—निजाम और हैदर अली—को मराठों से सन्धि न करने दी जाय। इन्होंने अपने युद्ध और सन्धि में सदैव ही इस बात का ध्यान रक्खा कि मराठों, हैदर और निजाम में सदैव के लिए फूट के बीज बो दिये जावें। इतिहासकार ग्राण्ट डफ ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है :—

बम्बई की गवर्नमेण्ट ने मि० मास्टिन को इस उद्देश्य से पूना भेजा कि इस बात के लिए प्रत्येक प्रयत्न किया जाय कि मराठों में गृह-विद्रोह की अग्नि भड़काई जावे अथवा हैदर और निजाम अली से मिलने में मराठों को रोका जाय।[१]

किन्तु नाना फड़नवीस ने ईस्ट इंडिया की इस कूटनीति को केवल पहिचाना ही नहीं, वरन् उनकी किसी भी राजनीतिक चाल को पनपने नहीं दिया। वे *अंग्रेजों के प्रति आदर तो प्रकट करते थे किन्तु उनके किसी भी राजनीतिक कौशल* को पूर्ण नहीं होने देते थे। वे भले ही भयानक से भयानक संकट में क्यों न पड़

१. Mr. Mastyn was sent to Poona by the Bombay Government, for the purpose of . .. .. using every endeavour by fomenting domestic dissensions or otherwise, to prevent the Marathas from joining Hyder or Nizam Ali—*Grant Duff · History of the Marathas*, page 340.

हों; वे अंग्रेजों से कभी स्थायी सैनिक सहायता लेने के पक्ष में नहीं रहे और सदैव ही अपने महाराष्ट्र का गौरव अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करते रहे।

संयोग से पेशवा माधवराव भी अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। उन्हें भी अंग्रेजों की नीति से आन्तरिक घृणा थी। वे क्षुब्ध थे कि उनके ही परिवार के—उनके चाचा रघुनाथराव ( राघोवा ) अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के वशीभूत होकर—सम्पूर्ण महाराष्ट्र की उज्ज्वल परम्पराओं की अवहेलना करते हुए ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों के हाथ के खिलौने बन गये हैं। उन्होंने पेशवा होकर विद्रोही रघुनाथराव को न जाने कितनी बार क्षमा किया किन्तु रघुनाथराव ऊपर से राजभक्त बने रहे—भीतर ही भीतर राजद्रोह की नींवें मजबूत करते रहे। पेशवा माधवराव अधिक वर्षों तक जीवित नहीं रहे, केवल २८ वर्ष की अवस्था में सन् १७७२ में उनकी मृत्यु हो गयी; किन्तु केवल ग्यारह वर्ष के शासन में उन्होंने महाराष्ट्र के अतीत गौरव को फिर से दक्षिण में स्थापित कर दिया और पानीपत की हार का पूरा बदला विपक्षियों से चुका लिया। इस सम्बन्ध में श्री वी० डी० सावरकर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू-पद-पादशाही' में लिखा है कि पारिवारिक कलह और ध्वंसात्मक जन-संग्राम के होते हुए (जो उनके मूर्ख चाचा की महत्त्वाकांक्षाओं के फलस्वरूप थे) उन्होंने पानीपत-युद्ध के दस वर्ष के भीतर ही अपने राष्ट्र द्वारा पानीपत, का नाम ही भुलवा दिया अथवा यदि वह नाम स्मरण भी रहा तो इस नाते कि हमारी हार वीरता से परिपूर्ण हार थी। उन्होंने अपने सशक्त हाथों से हिन्दू-स्वतंत्रता या हिन्दू-पद-पादशाही के विरोधियों को कुचल कर रख दिया।[1]

---

१. In spite of domestic troubles and ruinous civil wars caused by the ambitions of his silly uncle, he within the ten years of Panipat made his nation forget it or rather remember it as a battle that was nobly lost, and yet won and struck down with his mighty hand all those who raised their hand against the cause of Hindu Independence and Hindu Pad-Padshahi—*Sri V. D. Savarkar Hindu Pad-Padshahi, page* 148.

माधवराव पेशवा का शासन-काल नाना फड़नवीस के राजनीतिक उदय का उषाकाल था। इस उषाकाल में ही नाना की राजनीतिक अन्तर्दृष्टि और कार्य-कुशलता ने उन्हें महाराष्ट्र का ही नहीं, प्रत्युत समस्त देश का राजनीतिज्ञ घोषित कर दिया। नाना के कार्य-कौशल ने पेशवा माधवराव के साहस को और भी सुदृढ़ कर दिया। ऐसा ज्ञात होता है मानो माधवराव के साहस की फ़ौलादी तलवार पर नाना ने अपनी नीति का पानी चढ़ा दिया और यह तलवार कठिन से कठिन लक्ष्य पर अचूक और कठोर प्रहार करने में समर्थ हुई।

माधवराव की मृत्यु के अनन्तर तो गृह-विद्रोह ने और भी भयानक रूप धारण किया। रघुनाथराव और उनकी स्त्री आनन्दीबाई ने माधवराव के भाई नवीन पेशवा नारायणराव की हत्या कराई और स्वयं ही पेशवाई प्राप्त करने के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी का आश्रय लिया किन्तु नाना फड़नवीस ने इस अवसर पर ऐसी शक्ति, साहस और नीति का परिचय दिया कि रघुनाथ राव तो अपनी दुष्प्रवृत्तियों में असफल रहे ही, ईस्ट इंडिया कम्पनी भी नाना की इस नीति-कुशलता के समक्ष पराजित हुई। कंपनी के गहरे से गहरे हथकंडे साबुन के बुलबुलों की भाँति फूट गए और कंपनी के बड़े से बड़े कर्मचारी क्षुब्ध होकर काठ के खिलौने की भाँति निश्चेष्ट हो गये। नाना की योग्यता को स्वीकार करते हुए जे० सलीवन ने कर्नल ब्रिग्स को एक पत्र में लिखा था—

'हमें नाना फड़नवीस या उनसे मिलते-जुलते आदमी दीजिए। जब हम भारत के शासकों से अपनी तुलना करते हैं तो हम दयनीय बौने ज्ञात होते हैं।'[1] दुर्भाग्य से नाना फड़नवीस को भी लंबी आयु नहीं मिली। मार्च सन् १८००

---

१. Give us Nana Farnavis and such like. What poor pigmies we are as Indian Administrators when compared with *natives of that stamp !!! —J. Sullivan's letter to Colonel Briggs*, 1850.

है यह वातावरण की सूचिका है। पानीपत के परिणाम को जानने की उत्सुकता में ही नाटक का कुतूहल शक्ति-संग्रह करता है।

कथानक धीरे-धीरे पाण्डुरंग की मृत्यु और युद्ध की भयानकता पेशवा के हृदय को आन्दोलित करती है किन्तु पेशवा में धैर्य और आशावादिता है। वह पाण्डुरंग की माता को ऐसे उत्साह और साहस का संदेश देता है जैसे प्रभातकालीन सूर्य संसार के अंधकार को एक क्षण में समाप्त कर देता है। दूसरे ही क्षण जब कासिद द्वारा स्वयं पेशवा के पुत्र विश्वासराव की मृत्यु का समाचार मिलता है तो कुछ क्षण पूर्व पेशवा के द्वारा दिया गया धैर्य और आशावादिता का संदेश स्वयं पेशवा की मन:स्थिति का परिहास-सा करने लगता है, किन्तु पेशवा फिर भी अपना धैर्य नहीं खोता। उस समय नाना फड़नवीस का वार्तालाप पेशवा के हृदय में पुन: साहस का संचार करता है और पानीपत की हार जैसे जीत में परिणत होने का आभास देती है। इसी आशावादी दृष्टिकोण से प्रथम अंक समाप्त होता है। इस अंक में नाना फडनवीस की स्वस्थ मनोवृत्ति और उसकी विजय की कामना राजनीति के क्षेत्र में एक नवीन नक्षत्र के उदय की सूचना देती है।

पानीपत की हार का कष्ट पेशवा बालाजी बाजीराव को अधिक दिनों तक नहीं जीने देता और उनकी मृत्यु होने पर उनके द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा-पद पर अभिषिक्त होते हैं। उन्होंने जिस गौरव और प्रताप से महाराष्ट्र की राजनीति की बागडोर सम्हाली इसकी सूचना दूसरे अंक के प्रारंभ में मिल जाती है। अपने ग्यारह वर्षों के शासन-काल में उन्होंने समस्त विपक्षियों को पराजित किया है और समस्त महाराष्ट्र को उन्होंने एक सबल राष्ट्र की भाँति संगठित कर दिया है, किन्तु अब वे शिथिल हो गये हैं, अस्वस्थ भी रहने लगे हैं। इसका पूर्ण विवरण नाना फड़नवीस और रामशास्त्री के वार्तालाप में मिल जाता है। विद्रोह की झलक दिखलाने के लिए काकी आनन्दीबाई और काका रघुनाथराव के विद्रोह के चित्र उपस्थित किए गये और उनको किस प्रकार माधवराव पेशवा ने अपनी आत्मीयता और सहज स्नेह से रंजित किया है,

यह नाटक की इंद्रधनुषी झांकी देने में समर्थ हुआ है। इसमें नाना फड़नवीस की नीतिज्ञता और राजनीतिक अन्तर्दृष्टि पूरे उभार पर चित्रित की गयी है। पेशवा माधवराव की उदात्त व्यवहार-बुद्धि और नाना फड़नवीस की मर्यादित नीति वास्तव में नाटक के विद्रोही तत्वों को शान्ति की शीतलता से पवित्र करती है। इसीलिए दूसरे अंक का नाम विद्रोह की शान्ति है। मंगलमय कीर्तन से इस अंक की समाप्ति हुई है।

इस नाटक के तीसरे अंक में कथा-सूत्रों की संधि है। पेशवा माधवराव की मृत्यु हो चुकी है। विद्रोही रघुनाथराव और आनन्दीबाई ने नये-नये षड्यंत्रों की रचना की है। फलस्वरूप नवीन पेशवा नारायणराव की हत्या की गयी और रघुनाथराव द्वारा पेशवाई पर अधिकार करने के प्रयत्न हुए किन्तु नाना फड़नवीस ने पेशवा-वंश की पवित्रता की सुरक्षा में नारायणराव की विधवा पत्नी गंगाबाई के गर्भस्थ शिशु को ही पेशवा बनाने की घोषणा की। इसी कारण तीसरा अंक गंगाबाई के करुणा-पूरित मनोविज्ञान से ही प्रारंभ होता है। इस बीच रघुनाथराव ने गंगाबाई की हत्या के भी अनेक षड्यंत्र किये किन्तु नाना फड़नवीस की सूक्ष्म दृष्टि से उनका विघटन हुआ और स्वयं रघुनाथराव बंदी हुए। बन्दी रघुनाथराव और नाना फड़नवीस का वाद-विवाद दोनों के चरित्रों का वास्तविक उद्घाटन करता है। षड्यंत्रकारियों को दंड देकर नाना ने गंगाबाई के पुत्र को ही पेशवा-पद पर घोषित किया। यही उनकी राजनीति की सफलता है और इसी सफलता के साथ नाटक समाप्त होता है।

**नाट्य-शिल्प**

यह नाटक तीन अंकों में समाप्त हुआ है। इस नाटक में सबसे अधिक ध्यान घटना-संचयन पर रक्खा गया है। महाराष्ट्र के इतिहास के उज्ज्वल अतीत की वे समस्त घटनाएँ प्रकाश में आ जावें जिनसे हमारे सांस्कृतिक जीवन के चित्र अपने यथार्थ रूप में खिंच सकें। इन घटनाओं का आधार सत्य पर ही है, कल्पना उस सत्य को निखारने में सहायक मात्र होती है। इस भाँति संवेदनात्मक स्थलों की एकावली में ही नाट्य-शिल्प का प्रयोग हुआ है।

इस नाटक का कथानक व्यञ्जना-शक्ति द्वारा सूत्रबद्ध किया गया है। प्रथम अंक का प्रारंभ ही पृष्ठभूमि की अनेक परिस्थितियों की व्यंजना को लेकर हुआ है। प्रथम अंक और द्वितीय अंक के बीच में अनेक घटनाएँ काल के अंतराल में पड़ी हुई हैं जिनकी व्यञ्जना से ही दूसरा अंक आरम्भ होता है। दूसरे और तीसरे अंक के बीच में घटनाएँ किसी नदी के भीषण प्रवाह की भाँति बह चुकी हैं और उनकी लहरों की ध्वनियों में ही तीसरा अंक प्रारम्भ हुआ है। इस भाँति बोलती हुई घटनाओं के सचयन में ही कथानक का कौशल है और उसमें नाटकीय सग्रह-त्याग की प्रवृत्ति कार्य करती है। इसीलिए प्रत्येक अंक अपनी संवेदना में पूर्ण बन गया है और वह एकाकी की भाँति रंगमच पर उपस्थित भी किया जा सकता है। अभी पिछले वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् के सांस्कृतिक समारोह में इस नाटक का प्रथम अंक 'पानीपत की हार' नाम से रंगमंच पर अपनी कथावस्तु की पूर्णता के साथ उपस्थित किया गया था। इस भाँति व्यञ्जना-कौशल से प्रत्येक अक कथावस्तु के विभाजन की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो गया है और उसके द्वारा नाटक की संवेदना अपनी इकाई में स्वयं सिद्ध हो गयी है।

**कथा-वस्तु**

इस नाटक में चरित्रों की रूप-रेखा अत्यन्त प्रखर है। ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में जो सत्य है, उसे उद्घाटित करने से ही पात्र सजीव होता है। पात्रों के सस्कार और वातावरण के प्रभाव से जिस मनोविज्ञान का निर्माण होता है उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया में पात्रगत सत्य उभरता है। जब उस सत्य में वस्तुगत कल्पना का योग होता है तो पात्र में जीवन की वास्तविकता प्रकट होती है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में चरित्रों का कार्य-कलाप निर्मित हुआ है। प्रमुख पात्रों में बालाजी बाजीराव, माधवराव, रघुनाथराव (राघोबा), आनन्दीबाई, गंगाबाई, राजगुरु, रामशास्त्री और नाना फडनवीस हैं। प्रत्येक पात्र की रूप-रेखा उसके आन्तरिक सस्कार में है। इनमें बालाजी बाजीराव, माधवराव, गंगाबाई, राजगुरु रामशास्त्री और नाना फड़नवीसतोसात्विकभावनाओं [illegible]

**चरित्र-निरूपण**

यह नाटक की इंद्रधनुषी झाँकी देने में समर्थ हुआ है। इसमें नाना फड़नवीस की नीतिज्ञता और राजनीतिक अन्तर्दृष्टि पूरे उभार पर चित्रित की गयी है। पेशवा माधवराव की उदात्त व्यवहार-बुद्धि और नाना फड़नवीस की मर्यादित नीति वास्तव में नाटक के विद्रोही तत्वों को शान्ति की शीतलता से पवित्र करती है। इसीलिए दूसरे अंक का नाम विद्रोह की शान्ति है। मंगलमय कीर्तन से इस अंक की समाप्ति हुई है।

इस नाटक के तीसरे अंक में कथा-सूत्रों की संधि है। पेशवा माधवराव की मृत्यु हो चुकी है। विद्रोही रघुनाथराव और आनन्दीवाई ने नये-नये षड्यंत्रों की रचना की है। फलस्वरूप नवीन पेशवा नारायणराव की हत्या की गयी और रघुनाथराव द्वारा पेशवाई पर अधिकार करने के प्रयत्न हुए किन्तु नाना फड़न-वीस ने पेशवा-वंश की पवित्रता की सुरक्षा में नारायणराव की विधवा पत्नी गंगावाई के गर्भस्थ शिशु को ही पेशवा बनाने की घोषणा की। इसी कारण तीसरा अंक गंगावाई के करुणा-पूरित मनोविज्ञान से ही प्रारंभ होता है। इस बीच रघुनाथराव ने गंगावाई की हत्या के भी अनेक षड्यंत्र किये किन्तु नाना फड़नवीस की सूक्ष्म दृष्टि से उनका विघटन हुआ और स्वयं रघुनाथराव बंदी हुए। वन्दी रघुनाथराव और नाना फड़नवीस का वाद-विवाद दोनों के चरित्रों का वास्तविक उद्घाटन करता है। षड्यंत्रकारियों को दंड देकर नाना ने गंगावाई के पुत्र को ही पेशवा-पद पर घोषित किया। यही उनकी राजनीति की सफलता है और इसी सफलता के साथ नाटक समाप्त होता है।

यह नाटक तीन अंकों में समाप्त हुआ है। इस नाटक में सबसे अधिक ध्यान घटना-संचयन पर रक्खा गया है। महाराष्ट्र के इतिहास के उज्ज्वल अतीत की वे समस्त घटनाएँ प्रकाश में आ जावें जिनसे हमारे सांस्कृतिक जीवन के चित्र अपने यथार्थ रूप में खिच सकें। इन घटनाओं का आधार सत्य पर ही है, कल्पना उस सत्य को निखारने में सहायक मात्र होती है। इस भाँति संवेदनात्मक स्थलों की एकावली में ही नाट्य-शिल्प का प्रयोग हुआ है।

नाट्य-शिल्प

इस नाटक का कथानक व्यञ्जना-शक्ति द्वारा सूत्रबद्ध किया गया है। प्रथम अंक का प्रारंभ ही पृष्ठभूमि की अनेक परिस्थितियों की व्यजना को लेकर हुआ है। प्रथम अंक और द्वितीय अंक के बीच में अनेक घटनाएँ काल के अंतराल मे पड़ी हुई हैं जिनकी व्यञ्जना से ही दूसरा अक आरम्भ होता है। दूसरे और तीसरे अंक के बीच में घटनाएँ किसी नदी के भीषण प्रवाह की भाँति वह चुकी हैं और उनको लहरों की ध्वनियों मे ही तीसरा अंक प्रारम्भ हुआ है। इस भाँति बोलती हुई घटनाओं के संचयन मे ही कथानक का कौशल है और उसमें नाटकीय सग्रह-त्याग की प्रवृत्ति कार्य करती हैं। इसीलिए प्रत्येक अक अपनी सवेदना में पूर्ण बन गया है और वह एकाकी की भाँति रगमच पर उपस्थित भी किया जा सकता है। अभी पिछले वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् के सास्कृतिक समारोह मे इस नाटक का प्रथम अंक 'पानीपत की हार' नाम से रंगमंच पर अपनी कथावस्तु की पूर्णता के साथ उपस्थित किया गया था। इस भाँति व्यञ्जना-कौशल से प्रत्येक अंक कथावस्तु के विभाजन की दृष्टि से अपने आप मे पूर्ण हो गया है और उसके द्वारा नाटक की सवेदना अपनी इकाई मे स्वयं सिद्ध हो गयी है।

**कथा-वस्तु**

इस नाटक मे चरित्रों की रूप-रेखा अत्यन्त प्रखर है। ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में जो सत्य है, उसे उद्घाटित करने से ही पात्र सजीव होता है। पात्रों के सस्कार और वातावरण के प्रभाव से जिस मनोविज्ञान का निर्माण होता है उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया में पात्रगत सत्य उभरता है। जब उस सत्य में वस्तुगत कल्पना का योग होता है तो पात्र में जीवन की वास्तविकता प्रकट होती है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत नाटक मे चरित्रों का कार्य-कलाप निर्मित हुआ है। प्रमुख पात्रों में बालाजी बाजी-राव, माधवराव, रघुनाथराव (राघोबा), आनन्दीबाई, गगाबाई, राजगुरु, रामशास्त्री और नाना फड़नवीस हैं। प्रत्येक पात्र की रूप-रेखा उसके आन्तरिक संस्कार में है। इनमे बालाजी बाजीराव, माधवराव, गंगाबाई, राजगुरु रामशास्त्री और नाना फड़नवीस तो सात्विक भावनाओं से प्रेरित होकर राष्ट्रीयता

**चरित्र-निरूपण**

के निर्माण में अग्रसर हुए हैं और रघुनाथराव और आनन्दीवाई स्वार्थ से प्रेरित होकर कूटनीति में प्रवृत्त हुए हैं। फलतः बाह्य संघर्ष से अधिक आंतरिक संघर्ष हुआ है और इस संघर्ष में सत्य, न्याय और आदर्श की रूपरेखा अत्यधिक स्पष्ट हो गयी है। महाराष्ट्र की गौरव-गरिमा से सम्पन्न जिस मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा सात्विक पात्रों में होनी चाहिए उनमें नाना फड़नवीस प्रमुख हैं। जिस प्रकार छोटी-छोटी सहायक नदियाँ किसी बड़ी नदी से मिलकर जल-प्रवाह को अधिक वेगमय बना देती हैं, उसी प्रकार अन्य पात्रों के मनोविज्ञान ने नाना फड़नवीस के मनोविज्ञान को अधिक प्रखर बना दिया है। नाना का जीवन वास्तव में अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष का प्रतीक है और इसी परिस्थिति में उनके चरित्र का आलोक समस्त महाराष्ट्र की राजनीति पर पड़ा है। इतने बिखरे हुए मोतियों को ग्रथित करने वाला एक ही धागा है और उस धागे का नाम है नाना फड़नवीस। इस भाँति चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिक गहराइयों में इस के पात्रों का अन्तर्सम्बन्ध और स्वतंत्र व्यक्तित्व का महत्त्व निरूपित हुआ है।

घटनाओं में प्रवाह में जब कुतूहल घनीभूत होता है तो उसका पर्यवसान चरम सीमा में ही होना चाहिए। कथावस्तु में चरम सीमा का अत्यधिक महत्त्व है। जिस भाँति समस्त ऋतुएँ अपनी गति में चलकर ऋतुराज वसंत तक पहुँचती हैं, उसी प्रकार कथावस्तु के समस्त घटना-सूत्र चरम सीमा में अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं।

**चरम सीमा**

नाना फड़नवीस की शक्तिशालिनी जीवन-वृत्ति का इतिहास इतना घटना-संकुल है कि उसमें पद-पद पर चरम सीमा की स्थिति आ सकती है। इसी दृष्टिकोण से मैंने प्रत्येक अंक में चरम सीमा रखने का प्रयत्न किया है।

**प्रथम अंक की चरम सीमा**—विश्वासराव की मृत्यु का समाचार।

**द्वितीय अंक की चरम सीमा**—दृश्य के अंत का कीर्तन।

**तृतीय अंक की चरम सीमा**—सवाई माधवराव के पेशवा-पद की घोषणा।

इस चरम सीमा की प्राप्ति में संकलन-त्रय ने भी योग दिया है। कार्य-संकलन, स्थान-संकलन और काल-संकलन अपनी प्रभावान्विति से घटना और मनो-

विज्ञान को परस्पर जोड़ देते हैं। एक ही कार्य एक ही समय में एक ही स्थान पर घटित हो जाता है और संवेदना को विश्राम-स्थल मिल जाता है।

**संवाद**

पात्रों के संवाद उनके मनोविज्ञान से ही परिचालित होते हैं। पात्र के हृदय में गूंजने वाला एक-एक शब्द अपनी भाव-राशि में सजा हुआ एक-एक मोती है। उसकी आब तभी चमक सकेगी जब वह संवाद में अपना वास्तविक स्थान प्राप्त करेगा। यही कारण है कि संवाद के माध्यम से ही चरित्र-चित्रण की महत्ता दृष्टिगोचर होती है। पात्रों के उपयुक्त मनोविज्ञान को स्पष्ट करने वाला साधन संवाद ही है। परिस्थिति और मनोवैज्ञानिक दशा के आधार पर संवाद का रूप निर्धारित होना चाहिए। सामान्य रूप से उसे परिस्थिति का अनिवार्य अंग होना चाहिए। वह पात्रानुकूल होकर संक्षिप्त और हृदय-स्पर्शी हो। आवेश में यह संवाद अधिक विस्तार प्राप्त कर लेता है। इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत नाटक में मिलेंगे।

**भाषा**

इस नाटक की भाषा सरल और सुबोध है तथापि वह विभिन्न पात्रों के मुख में विभिन्न शैलियाँ ग्रहण करती है। किसी काल विशेष में जिस भाषा का प्रयोग जिस रीति से होता था, उसकी समीपतम स्थिति भाषा को प्राप्त होनी चाहिए। यह सही है कि इस नाटक के पात्रों ने अपने जीवन-काल में मराठी भाषा का ही प्रयोग किया होगा। यह नाटक हिन्दी का है अतः इस नाटक की हिन्दी ऐसी होनी चाहिए जो हिन्दी पाठकों को तत्कालीन मराठी का वातावरण दे सके। यही कारण है कि नाटक में अनेक स्थानों पर संवाद के शब्द मराठी भाषा-शब्दों के विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं। कीर्तन द्वारा मराठी भाषा-भावना का ही वातावरण उपस्थित किया गया है। नाटक में भाषा को परिस्थिति और पात्रों के अनुकूल रखने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है। पात्रों के मनोविज्ञान की दृष्टि से जहाँ मराठी-पद्य की आवश्यकता थी वहाँ उसे रखने में मैंने यथार्थ-चित्रण की उपयोगिता ही समझी है। ऐसे मराठी पद्यों का अनुवाद मैंने परिशिष्ट में दे दिया है।

## उपसंहार

इस नाटक के लिखने में मुझे बहुत बड़ा संतोष मिला है। मुझे नाना फड़नवीस के चरित्र ने अनेक कार्यों की प्रेरणाएँ प्रदान की हैं। मैं अपने देश के एक यशस्वी महापुरुष का चरित्र-चित्रण पूर्ण विश्वस्त रूप से कर सका, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। इस नाटक का अभिनय रंगमंच पर और इसका प्रसारण आकाशवाणी के विविध केन्द्रों से हुआ है। दर्शकों और श्रोताओं के संतोष से मुझे प्रोत्साहन और बल मिला है, और इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

अपने मित्र श्री भक्तिप्रसाद त्रिवेदी ( सहायक लायब्रेरियन, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी) के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक पुस्तकें भेज कर मेरी सहायता की है।

आवरण-चित्र मेरे प्रिय शिष्य और सहयोगी तथा कला-जगत् के मान्य चित्रकार डा० जगदीश गुप्त द्वारा निर्मित हुआ है। मैं अपने शिष्य और मित्र श्री नरोत्तमदास अग्रवाल से अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि उन्होंने यह नाटक इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित किया।

साकेत, प्रयाग

१५–९–६२ रामकुमार वर्मा

( मेरा अट्ठावनवाँ जन्मदिन )

## प्रथम अंक

# पानीपत की हार

स्थान : ताप्ती नदी के समीप बुरहानपुर

समय : संध्याकाल—२० जनवरी, सन् १७६१

[बुरहानपुर में बालाजी बाजीराव का शिविर। पानीपत के भीषण युद्ध की आशंका में वे पूना से चल कर ताप्ती के किनारे बुरहानपुर तक आ गये हैं। एक ऊंचा और विस्तृत तम्बू है जिसमें रेशम और सोने के तारों की झालरें लगी हैं। रंग-बिरंगे परदे। फ़र्श पर रेशमी बिछावन, जिन पर सोने का काम किया गया है।

मध्य में एक ऊँचा सिंहासन है। उससे हटकर छोटे-छोटे आसन हैं किन्तु इस समय जनकोजी भोसले और भास्करराव अपने आसनों के समीप खड़े हुए हैं। बालाजी बाजीराव अशान्त होकर टहल रहे हैं।

चारों ओर एक निस्तब्धता छाई है। पश्चिम के सूर्य की हल्की सुनहली किरणें बाईं ओर से शिविर में प्रवेश कर रही हैं। बालाजी बाजीराव एक क्षण ठहरकर जनकोजी भोंसले को सम्बोधित करते हैं।]

बालाजी : (अशान्ति से टहलते हुए एक क्षण रुककर) राज्यश्री का अपमान! क्या यह सत्य नहीं है कि सदाशिवराव भाऊ ने दिल्ली में राज्यश्री का अपमान किया?

जनकोजी : समाचार तो यही है, श्रीमन्त!

बालाजी : जैसे कोई पागल दर्पण में अपना मुख देखकर उस दर्पण को ही चूर-चूर कर दे! कोई मतवाला हाथी अपने ही महावत को पैरों से कुचल दे! कोई मूर्ख सुगन्धि फैलाने के लिए फूलों की माला

भाऊ ने निज़ाम अली को पराजित कर दौलताबाद, असीरगढ़ और बीजापुर के दुर्ग लिये और ६२ लाख की वार्षिक आय प्राप्त की । इसी विजय का यह अहंकार है जिससे भाऊ उत्तर भारत की राजनीति को खिलौने की भांति तोड़ रहा है और महाराष्ट्र की मर्यादा कलंकित हो रही है !

जनकोजी : श्रीमन्त ! मुझे आज्ञा दें, मैं अपनी सेना लेकर उत्तर भारत की ओर बढ़ूँ । श्रीमन्त भाऊ के अमर्यादित कार्य से भरतपुर के महाराज सूरजमल अपनी तीस हज़ार सेना लेकर भरतपुर लौट गये और इन्दौर के होल्कर तटस्थ हो गये ।

बालाजी : और भाऊ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया ?

भास्कर : श्रीमन्त ! भाऊ ने ही तो दोनों का अपमान किया । जब हमारी सेना राजसी वैभव के साथ—बड़े-बड़े तोपखानों, खेमों और सैनिकों की स्त्रियों और बच्चों के साथ—धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी तो महाराज सूरजमल और महाराज होल्कर ने श्रीमन्त भाऊ को सलाह दी थी कि सैनिकों के परिवारों और भारी खेमों को ग्वालियर या झाँसी में छोड़ दिया जाय और हल्के सामान के साथ सेना फुर्ती से आगे बढ़े, तब श्रीमन्त भाऊ ने दोनों नरेशों का अपमान कर दिया ।

बालाजी : अपमान कर दिया ? किस भाँति ?

भास्कर : श्रीमन्त भाऊ ने होल्कर-नरेश से कहा कि तुम्हारे पूर्वज बकरी-भेड़ चराते रहे हैं तो यह सेना गड़रियों की नहीं है जो बनजारों की भाँति चले ! भरतपुर-नरेश से कहा कि तुम जाट हो । जाटों में इतनी बुद्धि कहाँ कि वे राजनीति और वैभव की बात समझ सकें । यह बात सुनकर दोनों ही रुष्ट हो गये । भरतपुर-नरेश तो रणक्षेत्र से अपनी सेनाएँ भी हटा ले गये !

हाथों में मसल दे ! यह किस बुद्धि का वैभव है ? कल के समाचार का एक-एक शब्द एक भटकी हुई चिनगारी है जिससे महाराष्ट्र के वैभव में आग लग सकती है।

भास्कर : शान्त हों, श्रीमन्त ! आपकी राजनीति का सागर किसी भी अग्नि को बुझा सकता है ।

बालाजी : भास्कर ! वास्तविकता समझो—यह बलि-पशु का संतोष है जिसके भविष्य में एक नंगी तलवार है। सदाशिवराव भाऊ ने दिल्ली पर विजय प्राप्त की। राजधानी में प्रवेश करते ही उनकी धन की तृष्णा इतनी बढ़ गयी कि उन्होंने राजसिंहासन के स्वर्ण-शृंगार को गलवा डाला ! चाँदी की छत उखाड़कर उसके सिक्के ढलवा डाले ! मेरे राजकोष से वे दो करोड़ सिक्के ले गये थे ! वे सब क्या हुए ?

जनकोजी : यह भी समाचार है, श्रीमन्त ! कि उन्होंने राजस्थान के नरेशों से तीन करोड़ सिक्के और भी प्राप्त कर लिये थे ।

बालाजी : इतनी धन-राशि के होते हुए फिर राज-सिंहासन की मर्यादा नष्ट करने की क्या आवश्यकता थी ? जनकोजी ! क्या तुम नहीं देखते कि दिल्ली की राजलक्ष्मी नेत्रों में आँसू भरकर हमारे सामने खड़ी है ? वह सिसकते हुए शब्दों से कह रही है कि मैं महाराष्ट्र के हाथों में नहीं, उन लुटेरों के हाथों में पड़ गयी हूँ जो राज-मर्यादा नहीं जानते । जिस सिंहासन पर महाराष्ट्र का साहसी सैनिक हमारा बेटा विश्वासराव बैठता, उसका सोना उखाड़ लिया जाय ! राज-भवन की रूपहली छत तोड़ दी जाय ! यह कौन-सी राज-मर्यादा है ! राजधानी की राजलक्ष्मी की यह वाणी क्या सत्य नहीं है ?

जनकोजी : सत्य है, श्रीमन्त !

बालाजी : तोफिर महाराष्ट्र को इसका क्या प्रायश्चित्त भोगना होगा ? भगवान गजानन से पूछो । उदगेर के युद्ध में सदाशिवराव

जनकोजी : अधिक चिन्ता न करें, श्रीमन्त ! पानीपत के युद्ध में हमारी ही विजय होगी। त्र्यम्बक सदाशिव पुरन्दरे, हमारी सेना के बड़े कुशल सेनापति हैं। साथ ही विट्ठल शिविदेव, नरूशंकर, शमशेर बहादुर, बलवन्त गजानन मेहन्दले एक से एक चुने हुए वीर सेना के साथ है। महाराष्ट्र की शक्ति बड़े से बड़ अहंकार मे नष्ट नही हो सकती। फिर साथ मे श्रीमन्त के चिरंजीव विश्वासराव भी तो हैं। यद्यपि वे केवल उन्नीस वर्ष के हैं किन्तु उनके सामने बड़े से बड़े वीर के भी पैर उखड़ जाते हैं।

भास्कर : वे तो मेरे बचपन के साथी रहे हैं, श्रीमन्त ! उनकी वीरता तो ऐसी है कि वे एक साथ दस सैनिको से लड़ सकते हैं।

बालाजी : (गहरी सांस लेकर) विश्वासराव—महाराष्ट्र के आदर्शों की रक्षा करने मे समर्थ ! इसी विश्वास से उसका नाम राजगुरु ने विश्वास-राव रक्खा। भाऊ सदाशिवराव चाहते थे कि पानीपत के युद्ध में उसे न भजा जाय। वह बालक है। किन्तु मैंने ही उसे जाने का आदेश दिया। मैंने कहा कि महाराष्ट्र के बालक युद्धभूमि में ही बड़े होते हैं। उसकी तलवार रणक्षेत्र मे ही भवानी के कृपाण से शक्ति प्राप्त करती है। उनका रक्त तभी सार्थक होता है जब वह अपने रग से रणभूमि का अभिषेक करे।

जनकोजी : वे तो, श्रीमन्त ! शत्रुओं के रक्त से रणभूमि का अभिषेक करेंगे। फिर आपके आदेश से राजस्थान के सभी नरेश श्रीमन्त भाऊ की सहायता कर रहे हैं। जैसे ही श्रीमन्त भाऊ चम्बल पार कर आगे बढ़े कि जनकोजी सिन्धिया, दामाजी गायकवाड, जसवन्तराव पोवार, अप्पाजी आठावले, अन्ताजी मनकेश्वर और गोविन्दराव बुन्देल अपनी-अपनी सेना लेकर उनसे मिले हैं। हमारी सैन्य शक्ति अपार है, श्रीमन्त !

वालाजी : घोर अदूरदर्शिता ! यह सब ऐसे अवसर पर हुआ जब हम पानी पत की युद्धभूमि पर अहमदशाह अब्दाली की शक्ति को सदै के लिए कुचलने को आगे बढ़ रहे हैं। सदाशिवराव भाऊ मुझे पहिले से ही आशंका थी किन्तु उनका अहंकार इस सीम तक बढ़ जायगा, इसकी कल्पना नहीं थी। नाना फड़नवीस व भी साथ ले गये हैं। कहीं उस बेचारे ब्राह्मण-पुत्र पर भी संकट आ जाय !

भास्कर : एक बात पर और भी विचार करें, श्रीमन्त ! दिल्ली जीतने प श्रीमन्त भाऊ ने दिल्ली के शाह आलमगीर को हटाकर महारा के चिरंजीव विश्वासराव को दिल्ली का सम्राट घोषित कर दिया चिरंजीव तो सम्राट् होते ही किन्तु इतनी शीघ्र घोषणा करना ठी नहीं हुआ। इस घोषणा से अवध के नवाब शुजाउद्दौला औ दूसरे मुसलमान सरदार जो हमारे सहायक रहे हैं, वे सब मन ह मन असंतुष्ट हो गये हैं। इस समय तो हमें मुसलमानों की सहा भूति भी चाहिए।

जनकोजी : किन्तु भास्करराव ! अधिक चिन्ता की बात नहीं है। श्रीम भाऊ के साथ बीस हज़ार सवार, दस हज़ार पैदल और इब्राही गारदी का तोपखाना भी है। सिंधिया की फ़ौजें भी हैं।

वालाजी : किन्तु साथ में अहंकार और अदूरदर्शिता भी तो है। यह महारा का स्वभाव नहीं है, जनकोजी ! छत्रपति शिवाजी ने भी आलम गीर औरंगज़ेब से लोहा लिया। बड़ी-बड़ी फ़ौजों के मुक़ाब में उन्होंने जैसी दूरदर्शिता दिखलायी, वसी इतिहास में कहाँ है अफ़जल खाँ जैसे चालाक और कूटनीतिज्ञ सरदार को एक क्ष में समाप्त कर देना, छत्रपति का ही काम था। औरंगज़ेब चक्रव्यूह से निकल आना, इतिहास की अद्वितीय घटना है। लेकि भाऊ सदाशिवराव छत्रपति शिवाजी का उदाहरण नहीं समझ सके

मन लगा हुआ है। उसका न जाने क्या हाल होगा! उसके प्राणों का दायित्व भी हम पर है।

भास्कर : आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, श्रीमन्त! जनकोजी को ही जाने की अनुमति प्रदान करें। वे वहाँ से शीघ्र ही विजय का समाचार लावेंगे।

बालाजी : (सोचते हुए) विजय ... विजय ....राज्यश्री के अपमान पर विजय! ...पंक्ति में फूट होने पर भी विजय!......

[ बाहर किसी के क्रन्दन की ध्वनि। सिसकियाँ क्रमशः अधिक जोर से सुनाई पड़ती हैं। ]

बालाजी : (चौंककर) यह कैसा क्रन्दन? (भास्करराव से) भास्करराव! बाहर जाकर देखो।

भास्कर : (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा, श्रीमन्त! (शीघ्रता से प्रस्थान)

बालाजी : आज प्रातःकाल जब भगवान् गजानन की आरती हवा के तीव्र झोंके से बुझ गई तभी शंका का विष मेरे हृदय में फैलने लगा था कि पानीपत से आया हुआ समाचार भी कहीं मेरी आशा की आरती न बुझा दे! (सिसकियाँ तीव्रता से सुनाई देती हैं) यह कौन स्त्री है?

[ शिविर के बाहरी दरवाजे से एक स्त्री शीघ्रता से भास्करराव के साथ आती है। यह विह्वलता में बालाजी बाजीराव के चरण पकड़ लेती है। ]

स्त्री : (सिसकियाँ लेते हुए) पांडुरंग... पांडुरंग चला गया। श्रीमन्त! युद्ध में ... युद्ध में मारा गया... मेरा पांडुरंग... (सिसकियाँ लेकर) मेरा अकेला लाल ...पांडुरंग.... मुझे छोड़कर... चला गया। (सिसकियाँ जोर-जोर से लेती है।)

बालाजी : (संतोष के स्वरों में) पांडुरंग चला गया? मातृभूमि पर रक्त की बूँदें भी चढ़ती हैं, देवि! आँसू की बूँदें नहीं! उठो। (भास्कर से) भास्कर! यह कौन स्त्री है?

**बालाजी :** यह पानीपत का युद्ध है, जनकोजी ! इसी में महाराष्ट्र के भाग्य का निर्णय है । अफ़ग़ानिस्तान का अहमदशाह अब्दाली महाराष्ट्र का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता । इसीलिए वह अवसर देखकर आता है । और मैं कहता हूँ कि शत्रु को अवसर देना ही राजनीति की सबसे बड़ी भूल है । तुम जानते हो, जनकोजी ! शत्रु के आने का अवसर क्या है ? अवसर है हमारी परस्पर की फूट ! जब हम छोटी-छोटी बातों पर राष्ट्र की इकाई भूल जाते हैं तब हम जंगली जानवरों की तरह अपनी-अपनी माँद अलग बनाते हैं और व्याघ्र हमें एक-एक कर समाप्त कर देता है ।

**जनकोजी :** सत्य है, श्रीमन्त !

**बालाजी :** सदाशिवराव भाऊ यही भूल करते हैं । उन्होंने अपनी ही पंक्ति में फूट कर दी और अहमदशाह अब्दाली व्याघ्र की तरह महाराष्ट्र पर टूटना चाहता है ।

**भास्कर :** मुझे विश्वास है, वह घेर कर मारा जायगा, श्रीमन्त !

**बालाजी :** युद्ध और वर्षा के बादलों पर विश्वास कैसा ? आग और पानी कब किस ओर बरस जाय, कौन जानता है, भास्कर ! यद्यपि हमारी सैन्य-शक्ति महान् है किन्तु हृदय में अनेक प्रकार की शंकाएँ सर्प की भाँति चल रही हैं । पानीपत का नाम एक फूत्कार की भाँति हृदय में गूंज रहा है । आज भगवान् गजानन की आरती दो बार बुझी ! कहीं महाराष्ट्र की आरती के दो दीप न बुझ गये हों !

**जनकोजी :** शत्रुओं के दो वीर मारे गये होंगे, श्रीमन्त ! आप आज्ञा दें तो दस हज़ार सैनिक लेकर मैं भी पानीपत की ओर प्रस्थान कर दूं ।

**बालाजी :** तुम नहीं, मैं जाऊँगा, जनकोजी ! समाचार जानने की उत्सुकता में पूना से यहाँ बुरहानपुर तक आ ही गया हूँ । नर्मदा पार कर शीघ्र ही दिल्ली पहुँचना चाहता हूँ । नाना फड़नवीस में भी मेरा

मन लगा हुआ है। उसका न जाने क्या हाल होगा! उसके प्राणों का दायित्व भी हम पर है।

भास्कर : आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, श्रीमन्त! जनकोजी को ही जाने की अनुमति प्रदान करें। वे वहाँ से शीघ्र ही विजय का समाचार लावेंगे।

बालाजी : (सोचते हुए) विजय·····विजय····राज्यश्री के अपमान पर विजय!····पंक्ति में फूट होने पर भी विजय!·····

[ बाहर किसी के क्रन्दन की ध्वनि। सिसकियाँ क्रमशः अधिक जोर से सुनाई पड़ती हैं। ]

बालाजी : (चौंककर) यह कैसा क्रन्दन? (भास्करराव से) भास्करराव! बाहर जाकर देखो।

भास्कर : (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा, श्रीमन्त! (शीघ्रता से प्रस्थान)

बालाजी : आज प्रातःकाल जब भगवान् गजानन की आरती हवा के तीव्र झोंके से बुझ गई तभी शंका का विष मेरे हृदय में फैलने लगा था कि पानीपत में आया हुआ समाचार भी कहीं मेरी आशा की आरती न बुझा दे! (सिसकियाँ तीव्रता से सुनाई देती हैं) यह कौन स्त्री है?

[ शिविर के बाहरी दरवाजे से एक स्त्री शीघ्रता से भास्करराव के साथ आती है। यह विह्वलता में बालाजी बाजीराव के चरण पकड़ लेती है। ]

स्त्री : (सिसकियाँ लेते हुए) पांडुरंग···पांडुरंग चला गया। श्रीमन्त! युद्ध में····युद्ध में मारा गया· मेरा पांडुरंग· · (सिसकियाँ लेकर) मेरा अकेला लाल · ·पांडुरंग · · मुझे छोड़कर··चला गया। (सिसकियाँ जोर-जोर से लेती है।)

बालाजी : (संतोष के स्वरों में) पांडुरंग चला गया? मातृभूमि पर रक्त की बूँदें भी चढ़ती हैं, देवि! आँसू की बूँदें नहीं! उठो। (भास्कर से) भास्कर! यह कौन स्त्री है?

भास्कर : सेनानायक पांडुरंग सदाशिव नेने की माँ हैं । श्रीमन्त ! यह अभी पानीपत के गांव से आयी है ।

बालाजी : तो पांडुरंग की मृत्यु हुई ! कोई बात नहीं, देवि ! महाराष्ट्र में हजारों माताओं ने अपने पुत्रों की बलि दी है । यदि उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बहती तो महाराष्ट्र में प्रलय की बाढ़ आ जाती । नहीं····नहीं····उनके अश्रु पानी बनकर नहीं बहे, उनके अश्रु प्रतिशोध के स्फुलिंग बन गये । तभी तो महाराष्ट्र में इतना प्रकाश है । इतनी उष्णता है । तुम भी अपने आँसुओं को संचित रखो । दुर्दिन में महाराष्ट्र के काम आवेंगे । (स्त्री बालाजी बाजीराव के पैर छोड़कर उठती है । उसकी सिसकियां बन्द होती हैं ।) आज महाराष्ट्र धैर्य की कसौटी पर कसा जा रहा है । सही सूचना जान-बूझकर छिपायी जा रही है; और महाराष्ट्र की तीखी तलवार म्यान से निकली है । बोलो, देवि ! पानीपत के युद्ध में हमारे सैनिकों की विजय कब तक निश्चित हो जायगी ? तुम तो पानीपत से ही आ रही हो ?

स्त्री : (सम्हलकर) समाचार अच्छे नहीं हैं, श्रीमन्त ! हमारी सेना का कार्यक्रम निश्चित ढंग से नहीं चलता ।

बालाजी : (आश्चर्य से ) क्यों ?

स्त्री : जब आक्रमण का अवसर नहीं था, तभी श्रीमन्त भाऊ ने आक्रमण करने को आज्ञा दी और उसी में हमारी सेना के चार हजार व्यक्ति कट गये ।

बालाजी : (आश्चर्य से) चार हजार !

स्त्री : (सिसकियां लेकर) चार हजार··उन्हीं में आपका पांडुरंग भी था । सेना में सबसे आगे । उसकी तलवार की गति जैसे भवानी की तलवार की गति थी । 'हर हर महादेव' कहकर शत्रु पर बाज की तरह टूटा । जब शत्रु उसकी तलवार के सामने आते थे तो

गाजर-मूली की तरह कट जाते थे। कितनों का उसने रक्त बहाया। लेकिन उसका भी रक्त बहा!

बालाजी : (दुःख से) बहुत शोक है मुझे, देवि!

स्त्री : वीर सैनिक शत्रुओं का रक्त बहाकर जीवित भी तो लौटते हैं। मेरा पाडुरग जीवित नही लौट सका! मुझसे कहता था, श्रीमन्त! कि मैं तुम्हें लेकर··तुम्हें लेकर··श्रीमन्त को विजय की सूचना दूंगा। आज मैं ही उसकी मृत्यु की सूचना लेकर आई हूँ। (सिसकियाँ) मैं उसके बिना जीवित नही रहूँगी, श्रीमन्त!

बालाजी : धैर्य रखो देवि! तुम मेरे दुःख का अनुमान क्यों नही करती? तुम्हारा तो केवल एक ही पुत्र रणभूमि की बलि हुआ है, मेरे चार हजार पुत्र मारे गये! विश्वासराव कहाँ है? वह भी तो सेना के सामने युद्ध करता है।

स्त्री : श्रीमन्त! विश्वासरावजी के सम्बन्ध में मैं कुछ नही जानती। मैं तो पहले ही युद्ध में अपने पुत्र को खोकर चली आई हूँ। (हल्की सिसकी)।

बालाजी : विश्वासराव भी रणकुशल है। उसने हजारों शत्रुओं को मारा होगा। वह हाथी पर सवार होकर युद्ध करना अच्छी तरह जानता है। उसने तो हाथी पर से ही युद्ध किया होगा!

स्त्री : मैं नही जानती, श्रीमन्त!

बालाजी : तुम नही जानती किन्तु सेना का प्रत्येक वीर उसे जानता है। जब दोनों हाथों से वह तलवार चलाता है तो ज्ञात होता है जैसे एक ही तलवार दस तलवारें बन गई हैं। अच्छा होता, यदि पाडुरग उसके साथ ही रहता। वह कवच की भाँति पाडुरग की रक्षा करता।

स्त्री : मेरे पांडुरग का ऐसा भाग्य कहाँ था, श्रीमन्त! वह वीरता से लडा और रणभूमि मे सो गया।

बालाजी : वह रणभूमि में नहीं, युद्ध की शय्या पर सोया है। पुत्र की कीर्ति ही माता के हृदय को संतोष दे सकती है। विपत्ति से विवाद नहीं किया जा सकता, देवि ! यदि शोक को उत्तर देना है तो साहस का कवच धारण करो। तूफ़ान और काली घटाओं में इन्द्रधनुष बनो। तुम्हारे पुत्र का बलिदान तो ऐसा है कि मृत्यु की भी आँखों में आँसू आ जायँ ! किन्तु तुम हँसो। इसलिए कि तुम माता हो ! तुमने ऐसे पुत्र को जन्म देकर अपना मातृत्व अमर कर दिया है।

स्त्री : श्रीमन्त के वचनों से मुझे जीवन-दान मिला है, नहीं तो पुत्र के बिना मैं जीवित नहीं रह सकती थी।

बालाजी : तुम्हारा पुत्र तो जीवित है, देवि ! महाराष्ट्र के कण-कण में जीवित है। पहले वह सीमित था, अब असीम हो गया। प्रभु ने सबसे सुन्दर देह फूल की बनायी। किन्तु उन देहों में वह प्राण की प्रतिष्ठा करना भूल गया ! तुम्हारे पुत्र ने उन देहों में प्राण की प्रतिष्ठा की है। और आज प्रत्येक फूल रक्त को मुस्कान में बदल कर आशा और उल्लास का संदेश दे रहा है।

स्त्री : मैं धन्य हुई, श्रीमन्त !

बालाजी : कोई भी विपत्ति लम्बी नहीं है, देवि ! यदि तुम उसे देश-प्रेम और राष्ट्रीयता से नापो। सूर्य की भाँति परिस्थितियों के उज्ज्वल पक्ष को ही देखो। (भास्करराव से) भास्करराव ! वीर जननी के विश्राम की व्यवस्था राजकीय शिविर में हो।

भास्कर : जो आज्ञा, श्रीमन्त !

बालाजी : (स्त्री से) जाओ देवि ! विश्राम करो।

स्त्री : श्रीमन्त ! इसी प्रकार दीन-दुखिया की चिन्ता करें। (प्रणाम करती है।)

[भास्कर के साथ स्त्री का प्रस्थान]

बालाजी : शीघ्र ही उसे भेजो । बहुत दिनों से उसकी प्रतीक्षा थी ।

द्वारपाल : जो आज्ञा । (प्रस्थान)

बालाजी : पानीपत के साहूकार से सच्ची सूचनाएँ मिल सकेंगी । हम आज भी पानीपत के युद्ध का परिणाम नहीं जान सके हैं ।

जनकोजी : श्रीमन्त ! पानीपत का साहूकार आपका सेवक है । उसने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना के समाचार भेजने का वचन दिया था । अवश्य महाराष्ट्र की विजय की सूचना होगी !

[क़ासिद का प्रवेश]

क़ासिद : (हाथ जोड़कर) श्रीमन्त की जय !

बालाजी : स्वस्ति । तुम पानीपत से आये हो, क़ासिद ?

क़ासिद : हाँ, श्रीमन्त !

बालाजी : साहूकार जी सानन्द हैं ?

[क़ासिद : सानन्द नहीं हैं, श्रीमन्त ! बहुत चिन्तित हैं ।

बालाजी : हम भी बहुत चिन्तित हैं ! पानीपत के युद्ध में महाराष्ट्र के भाग्य का क्या निर्णय हुआ ? भाऊ, विश्वासराव और नाना फड़नवीस तो कुशल से हैं ?

क़ासिद : : यह पत्र भेजा है उन्होंने, श्रीमन्त ! (पत्र आगे बढ़ाता है) ।

बालाजी : जनकोजी ! पत्र पढ़ो ।

जनकोजी : जो आज्ञा । (क़ासिद के हाथ से पत्र लेकर पढ़ते हुए) राजमान राजश्री पन्त प्रधान पेशवा बालाजी बाजीराव की सेवा में साहूकार केशव का दण्ड-प्रणाम स्वीकार हो। आगे समाचार यह है कि पानीपत के युद्ध की ज्वाला में हमारे दो मोती घुल गये !

बालाजी : (चीखकर बीच ही में) जनकोजी !

जनकोजी : श्रीमन्त ! संभवत पत्र के अन्त में कोई संतोषप्रद समाचार हो । पूरा सुनने की कृपा करें । (पुनः पढ़ते हुए) हमारे दो मोती घुल गये, सत्ताईस मोहरें खो गयीं और चाँदी और तांबे के खोये हुए

सिक्कों की गणना भी नही की जा सकती। सामन्तो द्वारा साथ न देने के कारण पानीपत की लड़ाई में हार···· !

बालाजी : (बीच ही में) पानीपत की लड़ाई मे हार! (करुण स्वर) पानीपत की लड़ाई में····हार·····!

जनकोजी : श्रीमन्त! अपने को सम्हालें···!

बालाजी : जनकोजी! यह क्या हो गया? पानीपत के युद्ध मे इतनी अधिक सेना के होते हुए हार? यह असम्भव है, यह समाचार झूठ है।

क़ासिद : श्रीमन्त! क्षमा करें। पानीपत की हार मैंने इन्ही आँखो से देखी है। भगवान् की कृपा होती अगर मेरी आँखो की ज्योति उसी समय नष्ट हो जाती! हजारों महाराष्ट्र वीर अफगानियो और पठानों की तलवारो से कट गये! उनके रक्त की धारा से सारा पानीपत लाल हो गया!

बालाजी : पानीपत लाल हो गया! कासिद! क्या अहमदशाह अब्दाली की तलवार इतनी तेज़ थी? ओह! (सिर पकड़कर) यह क्या हो गया।

क़ासिद : श्रीमन्त! अहमदशाह अब्दाली के पैर तो उखड़ चुके थे। उसकी सेना भाग रही थी। उसी समय श्रीमन्त होल्कर की फ़ौज ने मैदान छोड़ दिया। उनके सिपाही जान-बूझकर पीछे हटते हुए रणक्षेत्र से भाग उठे। तभी अहमदशाह अब्दाली की फौज आगे बढ़ी और उसकी हार जीत मे बदल गयी।

बालाजी : (विह्वलता में) तो ·· तो होल्कर ही इस हार का उत्तरदायी है? भाऊ ने उसकी बात नही मानी इसीलिए उसने मौक़े पर धोखा दिया? भाऊ और विश्वासराव ने कुछ नहीं किया?

क़ासिद : श्रीमन्त! जैसे ही श्रीमन्त होल्कर की सेना भागी कि श्रीमन्त विश्वासराव ने अपना हाथी शत्रुओं की मारकाट के बीच मे बढ़ा

दिया। सैकड़ों शत्रुओं को हाथी के पैरों के नीचे दबाते हुए उन्होंने अपने बायें हाथ के भाले से घुड़सवारों की छाती छेद दी और दाहिने हाथ की तलवार से शत्रुओं के सिर उड़ा दिये।

बालाजी : विश्वासराव !..... मैं जानता था कि तुम शत्रुओं से महाराष्ट्र के मरे हुए वीरों का बदला लोगे। हाँ, फिर क्या हुआ ?

क़ासिद : जब श्रीमन्त विश्वासराव इस तरह शत्रुओं के सिर उड़ा रहे थे उसी समय श्रीमन्त ! उसी समय उनके पेट में गोली लगी।

बालाजी : (करुणा से) गोली ! ..... क्या .....क्या ..... वे घायल हो गये ?

क़ासिद : वे हाथी पर ही निढाल होकर बैठ गये, श्रीमन्त ! यह खबर फैलते ही श्रीमन्त भाऊ घोड़ा दौड़ाकर उनके पास पहुँचे। श्रीमन्त विश्वासराव को आहत देखकर उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। तभी श्रीमन्त विश्वासराव ने कहा—(उत्साही स्वर में) 'काका ! आँसू बहाने का समय नहीं है। हारते हुए युद्ध को जीत में बदलिये। एक-एक क्षण रक्त की बूँद बनकर बह रहा है। शत्रु को मारिए.....

बालाजी : (गहरी साँस लेकर) धन्य हो। विश्वास ! तुम महाराष्ट्र के सच्चे सपूत हो ! (उत्सुकता से) फिर ?

क़ासिद : श्रीमन्त विश्वासराव की ललकार सुनकर भाऊ शत्रुओं के बीच में घुस गये। और फिर उनका पता नहीं चला कि वे कहाँ गये ! दोनों ही वीर पानीपत की भेंट हो गये !

बालाजी : (करुणा से) भेंट हो गये ! आह :! (सिर पकड़ लेते हैं।) दो मोती घुल गये.....तभी साहूकार ने ऐसा लिखा ! भगवान् गजानन ! यह तुमने क्या किया ? ये दोनों रत्न.....अपनी ऋद्धि-सिद्धि का कोष इन्हीं से भरना था तुम्हें ? हाय भाऊ ! हाय विश्वास !

जनकोजी : श्रीमन्त ! चलिए ! शयन-कक्ष में चलिए ! आपका स्वास्थ्य पहले से ही खराब है ।

बालाजी : (तीव्रता से) मेरे सम्बन्ध में क्यों बात कर रहे हो ! भाऊ और विश्वास के विषय में बातें करो । दोनों वीर मेरे सिंहासन को अपने रक्त से अभिषिक्त कर चले गये और मैं अस्वस्थ होकर उसी सिंहासन पर बैठा हूँ । क्या मैं धिक्कार के योग्य नहीं हूँ ?

जनकोजी : श्रीमन्त ! आप तो युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत ही थे । आपकी दुर्बलता देखकर ही श्रीमन्त भाऊ ने आपसे रुक जाने की प्रार्थना की थी ।

बालाजी : और मैं रुक गया । जनकोजी ! मैं समरभूमि में जाने से रुक गया और वे दोनों चले गये । युद्ध-यात्रा पर जाने से पहिले भाऊ और विश्वासराव मेरे पास आये थे । दोनों वीर-वेश में सजे हुए थे । दोनों ने मेरे चरण स्पर्श किये और जाने की आज्ञा माँगी । मैंने भगवान् गजानन के चरणों के फूल उन दोनों के मस्तक पर रक्खे । उस वीर-वेष में मेरा विश्वासराव कितना सुन्दर लग रहा था, जैसे स्वामी कार्तिकेय युद्ध के लिए सजे हों ! बड़ी-बड़ी आँखों में युद्ध का अनुराग ! हँसकर उसने मुझे 'पिता' नहीं कहा—'पंत प्रधान' 'श्रीमन्त पेशवा' कहा और एक सैनिक की भाँति सिर उठाया । मैंने देखा उसके माथ पर टीका नहीं, त्रिपुंड है । मैंने भी हँसी से पूछा—सैनिक ! तुम्हारे मस्तक पर त्रिपुंड ! उसने कहा—सेवक को रणक्षेत्र में रौद्र रूप धारण करना है, इसीलिए मस्तक पर त्रिपुंड अंकित किया है । मैंने कहा—भगवान् शंकर तुम्हारी रक्षा करें ····(शिथिल स्वर से) किन्तु रक्षा नहीं हो सकी !

जनकोजी : यह एकमात्र संयोग की बात है, श्रीमन्त ! कि उन्हें गोली लग गयी ।

बालाजी : वह गोली मुझे लगनी चाहिए थी । यदि मैं वहाँ होता तो विश्वास को पीछे कर मैं अपने वक्षस्थल पर गोली खाता । लेकिन मैं वहाँ नहीं पहुँच सका । लेकिन इस गोली का पूरा बदला लिया जायगा । (क़ासिद से) क़ासिद ! चलो पानीपत मेरे साथ । मैं अहमदशाह से युद्ध करूँगा । कहूँगा, तुम ने मेरे बच्चे के साथ युद्ध कर क्या वीरता दिखलायी ! मुझसे युद्ध करो । मुझसे युद्ध ·····(शब्द गले में उलझ जाते हैं ।)

क़ासिद : धैर्य रक्खें, श्रीमन्त ! आपका प्रताप तो देश में चारों ओर फैला है । अहमदशाह पानीपत का युद्ध जीतकर भी पानीपत में नहीं है । वह अफ़गानिस्तान की तरफ चला गया । जीतकर भी जैसे वह हार गया है, श्रीमन्त ! उसकी इतनी हार हुई है कि वह उसे जीत कर भी पूरा नहीं कर सकता ।

बालाजी : लेकिन मेरी कितनी हानि हुई है, क़ासिद ! यह कौन जान सकेगा ! मैं दुखी हूँ । तुमसे फिर बात करूँगा । तुम जाओ ।

क़ासिद : जो आज्ञा । (प्रस्थान)

बालाजी : पांडुरंग नेने की माँ से कहना, जनकोजी ! कि मैंने भी अपना प्यारा पुत्र खो दिया है । और मेरी आँखों में आँसू नहीं हैं । कहना कि पांडुरंग अकेला नहीं गया है । उसके साथ मेरा विश्वासराव भी है और साथ में लक्षाधिक महाराष्ट्र के सैनिक । मेरा सूर्य प्रकाश की अनन्त किरणों के साथ डूबा है । अब अँधेरी रात है और मैं हूँ ।

[ अपना सिर हथेली से टेक लेते हैं । निस्तब्धता । एक क्षण बाद घंटे की ध्वनि सुनायी पड़ती है ]

जनकोजी : श्रीमन्त ! राजगुरु का आगमन हो रहा है ।

बालाजी : नदी की बाढ़ ने जब किनारों को तोड़ दिया तब शरद ऋतु की निर्मलता आ रही है ! जब नेत्रों की ज्योति समाप्त हो गयी तब अंजन की रेखा का क्या उपयोग होगा ?

[राजगुरु का प्रवेश]

राजगुरु : (आते ही) धर्मोसाठीं मरावें । मरोनि अवघ्यासी मारावें ।
मारितां मारितां घ्यावें । राज्य आपलें ।

बालाजी : राजगुरु के चरणों में बाजीराव का प्रणाम । (सिर झुकाते हैं।)

जनकोजी : चरणों में जनकोजी का प्रणाम । (सिर झुकाता है ।)

राजगुरु : स्वस्ति ! पंत प्रधान ! शोक से अपने जीवन को कुरूप मत बनाओ । पानीपत की हार केवल परिस्थितियों की हार है, वीरों की हार नहीं और जब वीरों की हार नहीं तब तुम्हारा निरुत्साह और शोक अनुचित है । यदि तुम्हारे हृदय में निरुत्साह और शोक आ गये तो मैं समझूंगा कि ये दोनों अहमदशाह अब्दाली के गुप्तचर हैं जो तुम्हारे हृदय से आरम्भ कर सारे महाराष्ट्र को कत्ल करने आये हैं । इन गुप्तचरों को दूर करो, नहीं तो ये तुम्हारे हृदय को ही दूसरा पानीपत बना देंगे जिससे जीत का कोई अंकुर नहीं उग सकेगा ।

बालाजी : राजगुरु ! मेरे हृदय में जिज्ञासा है कि महाराष्ट्र ने ऐसा कौन-सा पाप किया जिसका परिणाम इतना भयावह हुआ ! पानीपत ने हमारा पानी उतार लिया, हमारी पत नष्ट कर दी । भाऊ और विश्वासराव भी चले गये, राजगुरु ! यह किस महापाप का दण्ड है ?

राजगुरु : पंत प्रधान ! न यह पाप है, न महादण्ड । राज्य में महापाप तो तब होता है जब राजा निरंकुश और अत्याचारी हो, जनता की सुख-सुविधा छीन ली जाय, उस पर अनेकानेक कर लगा दे [illegible] जब दीन प्रजा को खाने-पीने और रहने की सुविधा न हो [illegible] ऐसा तो तुम्हारे राज्य में नहीं है ! तुम तो प्रजा को [illegible] समझते हो । पानीपत की हार महादण्ड भी नहीं है । [illegible] तो तब होता जब राज्य आततायियों के हाथ में [illegible]

जनता की सभ्यता और संस्कृति समाप्त हो जाती। जनता का नैतिक बल और धर्म नष्ट कर दिया जाता। यह तो कुछ भी नहीं हुआ। केवल सुदूर रणक्षेत्र में हमारी थोड़ी-सी सेना वीरगति को प्राप्त हुई। मैं देखता हूँ कि इस थोड़ी-सी पराजय की प्रतिक्रिया होगी। समस्त महाराष्ट्र फिर से ऐक्य के सूत्र में बँधेगा और पानीपत का बदला शत्रुओं के प्रचण्ड ऐश्वर्य और वैभव से लिया जायगा। समर्थ स्वामी रामदास ने कहा है :—

आहे तितुके जतन करावें। पुट आणिक मेलवावें।
महाराष्ट्र राज्यचि करावें। जिकड़े तिकड़े।

**बालाजी :** आपके कथन से शान्ति मिली, राजगुरु !

**राजगुरु :** आज रात में भगवान् गजानन की आरती होगी। उसमें पंत प्रधान आने का कष्ट करें।

**बालाजी :** अवश्य उपस्थित होऊँगा। एक बात और बतलायें, राजगुरु ! पानीपत से कोई सूचना मिली कि नाना फड़नवीस कहाँ है ? वह युद्ध में तो नहीं मारा गया। दुबला-पतला बीमार लड़का विश्वास-राव की भाँति प्रिय ! वह कैसे बचा होगा !

**राजगुरु :** नाना फड़नवीस सुरक्षित है।

**बालाजी :** (उल्लास से) सुरक्षित है ? धन्य गजानन ! धन्य राजगुरु ! वह कहाँ है ?

**राजगुरु :** वह पानीपत से दो घंटे पूर्व लौटा। मेरे ही साथ यहाँ आया है। द्वार पर है।

**बालाजी :** (विह्वलता से) द्वार पर है ? जनकोजी ! तुम जाकर देखो और उसे शीघ्र ही मेरे पास लाओ।

**जनकोजी :** जो आज्ञा, श्रीमन्त ! (प्रस्थान)

**बालाजी :** राजगुरु ! नाना फड़नवीस बच गया ! भगवान गजानन ! तुमने मेरे नाना को बचा लिया। मुझे तो ऐसा लगता है, राजगुरु ! जैसे मेरा

विश्वासराव ही मारा गया ! भाऊ के साथ गया था । काशी और वृन्दावन की तीर्थ-यात्रा करने । रण-यात्रा भी कर ली उसने ।

राजगुरु : अच्छा ! अब आप नाना फड़नवीस से मिलें किन्तु किसी कारण से आप दुःखित न हों । मैं चलूँगा, मुझे पूजा के लिए देर हो रही है ।

बालाजी : प्रणाम करता हूँ । भगवान् गजानन से प्रार्थना करें कि महाराष्ट्र के भविष्य पर आँच न आने पाये !

राजगुरु : (हाथ उठाकर) स्वस्ति !

[प्रस्थान । उनके प्रस्थान पर फिर घंटा बजता है ।]

बालाजी : (सोचते हुए) और नाना ! तुम बच गये ! नहीं तो मेरे दुर्भाग्य ने मेरे सभी रत्न मुझसे छीन लिये थे । तुम्हारा बचकर आ जाना तो वैसा ही है जैसे किसी को उसकी खोयी हुई दृष्टि फिर से प्राप्त हो जाय !

[ जनकोजी के साथ नाना फड़नवीस का प्रवेश ]

बालाजी : ओह ! नाना तुम आ गये । (उठकर) देखूँ, कहीं तुम्हें तो कोई घाव नहीं लगे ? नहीं नहीं तुम स्वस्थ और सकुशल हो ।

नाना : श्रीमन्त की जय !

बालाजी : नाना ! मेरी जय बोलते हो ! जय—जय—(व्यंग्य की हँसी हँसते हैं ।) मेरा परिहास न करो, नाना ! अहमदशाह अब्दाली की जय बोलो । पानीपत में उसने मेरी दोनों भुजाएँ काट ली । भाऊ और विश्वास ! उनका रक्त देखा था तुमने ! कितना लाल था ? (जनकोजी से) जनकोजी ! तुम अब मुझे अकेला रहने दो, नाना के साथ । इस समय मुझे किसी सेनापति की आवश्यकता नहीं है । तुम जाओ ।

जनकोजी : जो आज्ञा ! श्रीमन्त ! (प्रस्थान)

जनता की सभ्यता और संस्कृति समाप्त हो जाती। जनता का नैतिक बल और धर्म नष्ट कर दिया जाता। यह तो कुछ भी नहीं हुआ। केवल सुदूर रणक्षेत्र में हमारी थोड़ी-सी सेना वीरगति को प्राप्त हुई। मैं देखता हूँ कि इस थोड़ी-सी पराजय की प्रतिक्रिया होगी। समस्त महाराष्ट्र फिर से ऐक्य के सूत्र में बँधेगा और पानीपत का बदला शत्रुओं के प्रचण्ड ऐश्वर्य और वैभव से लिया जायगा। समर्थ स्वामी रामदास ने कहा है :—

आहे तितुके जतन करावें। पुट आणिक मेलवावें।
महाराष्ट्र राज्यचि करावें। जिकड़े तिकड़े।

बालाजी : आपके कथन से शान्ति मिली, राजगुरु !

राजगुरु : आज रात में भगवान् गजानन की आरती होगी। उसमें पंत प्रधान आने का कष्ट करें।

बालाजी : अवश्य उपस्थित होऊँगा। एक बात और बतलायें, राजगुरु ! पानीपत से कोई सूचना मिली कि नाना फड़नवीस कहाँ है ? वह युद्ध में तो नहीं मारा गया। दुबला-पतला बीमार लड़का विश्वास-राव की भाँति प्रिय ! वह कैसे बचा होगा !

राजगुरु : नाना फड़नवीस सुरक्षित है।

बालाजी : (उल्लास से) सुरक्षित है ? धन्य गजानन ! धन्य राजगुरु ! वह कहाँ है ?

राजगुरु : वह पानीपत से दो घंटे पूर्व लौटा। मेरे ही साथ यहाँ आया है। द्वार पर है।

बालाजी : (विह्वलता से) द्वार पर है ? जनको [illegible] जाकर देखें उसे शीघ्र ही मेरे पास लाओ।

जनकोजी : जो आज्ञा, श्रीमन्त ! (प्रस्थान

बालाजी : राजगुरु ! नाना फड़नवीस बच गए [illegible] नाना को बचा लिया। मुझे तो ऐ[illegible]

हम विपत्तियों के पक्षियों को सिर पर उड़ने से नहीं रोक सकते किन्तु उन्हें हृदय में घोंसले बनाने से रोक सकते हैं ।

बालाजी : लेकिन यह कैसे भूला जा सकता है कि आज महाराष्ट्र के दो परम वीर सदाशिवराव भाऊ और विश्वासराव नहीं हैं ।

नाना : श्रीमन्त ! यदि हमारी पूर्व दिशा की खिड़कियाँ बन्द कर दी जायँ तो क्या सूर्योदय का प्रकाश हमें नहीं मिलेगा ? प्रकाश तो सब तरफ से आने का रास्ता खोजता है। श्रीमन्त ! हम कपड़ों को उलट कर नहीं पहिनते लेकिन यदि हम बादलों को उलट कर देखें तो हमें प्रकाश ही प्रकाश दिखलायी देगा । इस समय तो धैर्य ही हमारा राज्य है और साहस ही हमारा मुकुट है। हमारा दुःख हमारी वीरता की ही छाया है क्योंकि हम प्रकाश में खड़े हैं। छाया का महत्व नहीं है, श्रीमन्त ! प्रकाश का महत्व है ।

बालाजी : तुम्हारी वाणी से प्रकाश मिलता है, नाना ! यद्यपि तुम मेरे बच्चे के समान हो किन्तु समस्त जीवन की गति-विधि में तुम्हारी दृष्टि है । भगवान् गजानन तुम्हें शक्ति दें कि भविष्य में भी तुम प्रकाश दे सको ।

नाना : श्रीमन्त ! आपका आशीर्वाद अमर रहे। जिस प्रकार आकाश को अपनी नीलिमा पर और धरती को अपनी हरीतिमा पर विश्वास है, उसी प्रकार मानव को अपने साहस पर विश्वास होना चाहिए । हमारे श्रीमन्त विश्वासराव ने इसी सत्य की घोषणा की है । जब मुझे अपने इस भाई पर इतना गर्व है तो आपको अपने पुत्र पर कितना गर्व न होगा !

बालाजी : विश्वासराव के विश्वासी नाना ! आज मैंने तुम्हें अपने पुत्र का महत्त्व दिया ।

नाना : मैं कृतार्थ हुआ, श्रीमन्त ! आपके पुत्र को बहुत कड़ी परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । महाराष्ट्र में मैं अपनी वही परीक्षा दूँगा । महाराष्ट्र में उसका भगवा झंडा फिर से लहरायेगा । भगवान् गजानन

बालाजी : अभी राजगुरु आये थे, नाना ! उन्होंने समर्थ गुरु रामदास की वाणी सुनायी। मैंने उनसे बड़ी शक्ति पायी। बड़ी कठिनाई से मैंने अपने आँसू तो रोक लिए किन्तु भाऊ और विश्वासराव के रक्त की बूंदें मेरी आँखों के भीतर ही भीतर बह रही हैं, नाना ! जो किसी के हाथों से नहीं पोंछी जा सकती।

नाना : श्रीमन्त ! दोनों वीरों का रक्त इतिहास भी नहीं पोंछ सकता। बहने दीजिए उसे। महाराष्ट्र की फूट की संधियाँ शायद उसी रक्त से भरेंगी। मैं लज्जित हूँ कि अपना रक्त बहाने का अवसर न पा सका। श्रीमन्त भाऊ ने शपथ देकर मुझे रणभूमि से लौटा दिया।

बालाजी : वे तीर्थ-यात्री को रण-यात्री कैसे बना सकते थे ? भाऊ ने ठीक किया कि मेरे सहारे के लिए उन्होंने तुम्हें वापस लौटा दिया। लेकिन तुम बतलाओ, नाना ! जो तुम्हें भाई के समान प्रिय था उस विश्वासराव को खोकर मैंने क्या नहीं खो दिया !

नाना : श्रीमन्त ने ऐसे वीर पुत्र के पिता होने का गौरव प्राप्त किया है। इस पानीपत के युद्ध में हारकर भी महाराष्ट्र ने युद्ध-वीरों को उत्पन्न करने का गौरव घोषित कर दिया है। वह पराजय पाने पर भी विजयी है।

बालाजी: तुम सत्य, कहते हो, नाना ! हमारे महाराष्ट्र के वीर यदि विजयी नहीं हो सके तो शत्रु को मारकर मरने का साहस तो दिखला सके !

नाना : यदि यही साहस भविष्य में परस्पर की फूट की जड़ उखाड़ सका तो सत्य ही हिन्दू-पद-पादशाही की राजनीति अखण्ड राजनीति होगी, श्रीमन्त !

बालाजी : किन्तु पानीपत की हार···

नाना : ( बीच ही में) श्रीमन्त ! क्षमा करें। मैं बीच ही में बोल रहा हूँ। पानीपत की हार की बात जल्दी से जल्दी भूलने की बात है।

हम विपत्तियों के पक्षियो को सिर पर उड़ने से नहीं रोक सकते किन्तु उन्हें हृदय में घोंसले बनाने से रोक सकते है ।

बालाजी : लेकिन यह कैसे भूला जा सकता है कि आज महाराष्ट्र के दो परम वीर सदाशिवराव भाऊ और विश्वासराव नही है ।

नाना : श्रीमन्त ! यदि हमारी पूर्व दिशा की खिडकियाँ बन्द कर दी जायँ तो क्या सूर्योदय का प्रकाश हमे नही मिलेगा ? प्रकाश तो सब तरफ से आने का रास्ता खोजता है । श्रीमन्त ! हम कपड़ों को उलट कर नही पहिनते लेकिन यदि हम बादलो को उलट कर देखें तो हमे प्रकाश ही प्रकाश दिखलायी देगा । इस समय तो धैर्य ही हमारा राज्य है और साहस ही हमारा मुकुट है । हमारा दु:ख हमारी वीरता की ही छाया है क्योंकि हम प्रकाश मे खडे है । छाया का महत्व नही है, श्रीमन्त ! प्रकाश का महत्व है ।

बालाजी : तुम्हारी वाणी से प्रकाश मिलता है, नाना ! यद्यपि तुम मेरे बच्चे के समान हो किन्तु समस्त जीवन की गति-विधि मे तुम्हारी दृष्टि है । भगवान् गजानन तुम्हें शक्ति दें कि भविष्य मे भी तुम प्रकाश दे सको ।

नाना : श्रीमन्त ! आपका आशीर्वाद अमर रहे । जिस प्रकार आकाश को अपनी नीलिमा पर और धरती को अपनी हरीतिमा पर विश्वास है, उसी प्रकार मानव को अपने साहस पर विश्वास होना चाहिए । हमारे श्रीमन्त विश्वासराव ने इसी मन्त्र की घोषणा की है । जब मुझे अपने इस भाई पर इतना गर्व है तो आपको अपने पुत्र पर कितना गर्व न होगा !

बालाजी : विश्वासराव के विश्वासी नाना ! आज मैंने तुम्हें अपने पुत्र का महत्त्व दिया ।

नाना : मैं कृतार्थ हुआ, श्रीमन्त ! आपके पुत्र को बहुत बड़ी परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । महाराष्ट्र में मैं अपनी वही परीक्षा दूँगा । महाराष्ट्र में उसका भगवा झंडा फिर से लहरायेगा । भगवान् गजानन

की कृपा हो । आप महाराष्ट्र के बिखरे वीरों को फिर से एकत्र करें । लोग कहते हैं कि गुलाब चाहे जहाँ उगे, अपने साथ काँटे भी उत्पन्न करता है । मैं कहता हूँ, ठीक है, किन्तु जहाँ काँटा है, वहाँ कुछ समय बाद गुलाब भी होगा ।

बालाजी : मुझे भी विश्वास है, नाना ! कि हमारी हार ही विजय की दुंदुभी बनेगी ।

नाना : मैं धन्य हूँ, श्रीमन्त ! कि आपके शोक ने साहस का रूप ले लिया । साहस तो आप में है ही, कुछ क्षणों के लिए शोक-समाचार से दब गया था । यह निश्चय मानें, श्रीमन्त ! कि उत्साह की गति पृथ्वी की सबसे सुन्दर लकीर है और प्रसन्नता की ध्वनि-पृथ्वी की सबसे मधुर ध्वनि है ।

बालाजी : तुम महाराष्ट्र में ही नहीं, सारे भारतवर्ष में अमर रहोगे, नाना ! चलो मेरे साथ विश्राम-कक्ष में चलो ।

नाना : चलिए, श्रीमन्त ! आप स्वस्थ हों । मैं प्रण करता हूँ कि पानीपत की हार को जीत में बदल दूंगा । महाराष्ट्र का 'मंगलाचरण' विजय से आरम्भ हुआ था, उसका 'भरतवाक्य' भी मेरे जीते-जी विजय से समाप्त होगा ।

बालाजी : तथास्तु ! अब से महाराष्ट्र का समस्त उत्तरदायित्व मेरे दूसरे पुत्र चिरंजीव माधवराव और तुम पर होगा । चलो मेरे साथ ।

[ प्रस्थान ]

---

द्वितीय अंक

# विद्रोह की शान्ति

# द्वितीय अंक

## विद्रोह की शान्ति

काल : सन् १७७१

[श्रीमन्त पेशवा माधवराव के महल का बाहरी कक्ष। कक्ष में राजसी सजावट। रेशमी परदे और मखमल के गद्दे तथा कालीन। कक्ष में स्वर्गीय पेशवा बालाजी बाजीराव का तैल-चित्र। श्रीमन्त माधवराव का मखमली आसन। उसके दाहिनी ओर रामशास्त्री का तथा बाईं ओर नाना फड़नवीस का आसन।

इस समय कक्ष में नाना फड़नवीस और रामशास्त्री वार्तालाप कर रहे हैं। रामशास्त्री बैठे हुए एक पत्र देख रहे हैं और नाना फड़नवीस कक्ष में टहल रहे हैं।]

राम : नाना फडनवीस! आज श्रीमन्त पेशवा माधवराव जी ने एक बड़ा गंभीर प्रश्न पूछा है। क्या अनुमान कर सकते हो?

नाना : (टहलते-टहलते रुककर) प्रश्न पूछा गया महाराष्ट्र के परम न्यायमूर्ति रामशास्त्री से और अनुमान लगाये नाना फडनवीस (गंभीर हँसी हँसकर) पंत प्रधान और न्यायमूर्ति अभिन्न हैं। उनमें वही संबंध है जो फल और उसकी मिठास में होता है। पंत प्रधान फल है और न्यायमूर्ति रामशास्त्री उस फल की मिठास।

राम : फल और उसकी मिठास! यह तो काव्य की उपमा है। न्याय का उससे क्या सम्बन्ध? लेकिन यदि थोड़ी देर के लिए मैं कवि बन जाऊँ तो कहूँगा कि फल और मिठास अपूर्ण हैं जब तक उसमें सुगंधि न हो! और इस सुगंधि की पूर्ति जानते हो किससे होती है? तुमसे—नाना फडनवीस से।

नाना : (मुस्कुराकर) आज तो न्यायमूर्ति कवि भी बन गये ।

राम : कवि होना तो बड़े भाग्य की बात है । मैं न्याय-शास्त्र के पत्थरों से ठोकर खाने वाला पथिक ! मेरे लिए कविता तो मृग-जल की भाँति है ! न्याय-बुद्धि तो वास्तविकता का कूप-जल है जो पृथ्वी के हृदय को छूता है । श्रीमंत पंत प्रधान आज उसी न्याय-बुद्धि की परीक्षा लेने बैठ गये ! यह पत्र उसका साक्षी है ।

नाना : श्रीमन्त पंत प्रधान का पत्र है ?

राम : पत्र नहीं, प्रश्न-पत्र है । तभी तो परीक्षा है ।

नाना : (मुस्कुराकर) और आपका उत्तर परीक्षक की भी परीक्षा ले लेता है । कैसा प्रश्न-पत्र है ?

राम : अनुमान कर सकते हो ?

नाना : कर सकता हूँ । श्रीमन्त ने पूछा होगा कि पानीपत के युद्ध का प्रतिशोध मैं शत्रुओं से ले सका, अथवा नहीं ।

राम : तुमने उनके प्रश्न को अधिक स्पष्ट कर दिया । उन्होंने पूछा है कि स्वर्गीय पेशवा बालाजी बाजीराव जो दायित्व मुझे देकर गये थे, उसकी पूर्ति मैं कर सका हूँ या नहीं ?

नाना : आपने क्या उत्तर सोचा है ?

राम : मैंने यह सोचा है, नाना ! कि मैं श्रीमन्त को लिखूं कि आप अपने दायित्व की कोई एक संख्या निर्धारित कर लीजिए । उसमें आप उतने दिनों की संख्या से भाग दीजिए जितने दिनों आपकी तलवार म्यान से बाहर रही है । यदि कुछ शेष बचे तो समझ लीजिए कि उतना दायित्व शेष है जिसकी पूर्ति होना है ।

नाना : मैंने कहा था न कि आपका उत्तर परीक्षक की भी परीक्षा लेता है ।

राम : बात यह है, नाना ! कि पानीपत के युद्ध से महाराष्ट्र का हृदय इतना टूट गया है कि उसे जोड़ने के लिए निरन्तर उत्साह और

गतिशीलता की आवश्यकता है । महाराष्ट्र मे चिनगारियाँ तो हैं । उन्हें फूंक मार कर लपट बनाने की आवश्यकता है । और श्रीमन्त के हृदय में आँधी है जिससे वे विदेशियो के वैभव में आग लगा सकते हैं ।

नाना : आपका कथन यथार्थ है, न्यायमूर्ति ! पानीपत की पराजय से स्वर्गीय पेशवा बालाजी बाजीराव को इतनी यत्रणा हुई कि वे अधिक दिनों तक जीवित नही रह सके । उनकी समस्त आशाएँ अपने द्वितीय पुत्र श्रीमन्त माधवराव पर ही केन्द्रित थीं और यह महाराष्ट्र का सौभाग्य है कि श्रीमन्त माधवराव ने केवल दस वर्षों ही मे महाराष्ट्र का खोया हुआ मुकुट फिर महाराष्ट्र के मस्तक पर रख दिया । जिस दिशा में श्रीमन्त की तलवार उठी, उसी दिशा में शत्रुओ ने पानीपत की हानि ब्याज सहित चुकाई ।

राम : (मुस्कुराकर) तुम फडनवीस का कार्य कर चुके हो, इसलिए ब्याज का स्मरण तुम्हें सदैव ही रहता है ।

नाना : अवश्य ही रहेगा, न्यायमूर्ति ! क्योंकि यह ब्याज मूल से भी अधिक बढ़ गया है । राज के अंतरंग संघर्षों को समाप्त कर श्रीमन्त ने बुदेलखड और राजस्थान के विद्रोहियो को दड दिया । जाटों से आगरा छीन कर उन्हें युद्ध-भूमि में ही नष्ट किया विश्वासघाती नजीब खाँ से दिल्ली लेकर पानीपत में लटी गयी सारी सम्पत्ति वापस ली । अहमदशाह अब्दाली ने घटने टेक कर क्षमा माँगी । रोहिलखड मे रुहेलों और पठानो के रक्त से तलवार की प्यास बुझाई । दक्षिण में तुगभद्रा पार कर श्रीमन्त की सेना ने हैदर के अहकार को इतना चूर किया कि उसे महाराष्ट्र का एक-एक क़िला वापस करना पडा । लोग पानीपत का नाम भूल गये ।

**राम :** और यदि नहीं भूले तो इसलिए नहीं भूले कि उन्हें पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में केवल एक वार हारना पड़ा जबकि दस वर्ष के भीतर ही उनके शत्रुओं को दर्जनों रण-भूमियों में दर्जनों वार हारना पड़ा।

**नाना :** इसीलिए तो मैंने कहा कि व्याज मूल से भी अधिक वढ़ गया ! लेकिन श्रीमन्त के प्रश्न में एक महान् रहस्य है।

**राम :** तुम राजनीतिज्ञ हो। तुम इसे अच्छी तरह समझ सकते हो।

**नाना :** न्यायमूर्ति ! पिछले दस वर्षों में श्रीमन्त ने एक क्षण विश्राम नहीं लिया। पानीपत की हार जैसे एक कृत्या राक्षसी थी जिसके लिए श्रीमंत का साहस एक सुदर्शन चक्र की भाँति गतिशील हुआ और श्रीमंत की तलवार चारों दिशाओं में चमकी। शत्रुओं का समूह शक्ति के चक्रव्यूह में घेर कर मारा गया। श्रीमंत का शौर्य एक प्रलय के मेघ की भाँति वरसा। किन्तु अव वह मेघ क्षीणकाय होकर जर्जर हो गया है। शत्रुओं को होमकुंड में भस्म करने के वाद कुछ शेप न रहने पर अग्नि की लपट अव दुर्वल हो रही है।

**राम :** हाँ, श्रीमंत अव अस्वस्थ रहने लगे हैं।

**नाना :** उन्हें भय है कि यह ज्योति अव कहीं शान्ति में लीन न हो जाय ! उनकी वढ़ती हुई अस्वस्थता किसी आशंका से उन्हें वार-वार अशांत कर रही है। वे वार-वार स्वयं अपने से प्रश्न करते हैं कि उनके कंधों पर जो दायित्व था वह पूर्ण हुआ अथवा नहीं ? जव वे स्वयं उत्तर नहीं दे पाते तो आप से प्रश्न पूछते हैं कि वे युद्ध का प्रतिशोध शत्रुओं से ले सके अथवा नहीं।

**राम :** तुम तो वहुत वड़े राजनीतिज्ञ हो, नाना ! यह सारी विजय की विभूति तुम्हारी ही अन्तर्दृष्टि से प्राप्त हुई है। तुम श्रीमन्त के परामर्शदाता हो। उनसे कह दो न, कि वे पार्वती के मन्दिर में कुछ मास विश्राम करें।

नाना : वे विश्राम तो करना चाहते हैं, किन्तु एक कारण है जिससे विश्राम में भी उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी ।

राम : हाँ, वह कारण मैं भी जानता हूँ किन्तु रक्षा का कोई उपाय नहीं है, नाना ! इस संबंध में श्रीमन्त ने अनेक बार समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है । मुझसे अनेक बार सहायता भी चाही ।

नाना : किन्तु समस्या सुलझ नहीं सकी । काका रघुनाथराव ने पेशवा बनने के लिए किन-किन उपायों का अवलम्बन नहीं किया ! उन्होंने विद्रोह किये—विदेशियों के साथ संधि-पत्र लिखे—विश्वासघात किया । यह ऐसी अग्नि है, न्यायमूर्ति ! जो यज्ञ-कुंड को भी जला देगी ।

राम : मैं तो समझता हूँ कि यदि काका रघुनाथराव विद्रोह में विश्वास रखते हैं तो एक ही परिस्थिति से उनको रास्ते पर लाया जा सकता है । वह यह है कि जिस-जिस स्थान पर वे रहें उसी स्थान पर समस्त जनता उनसे विद्रोह करे । जनता की शक्ति किसी भी विश्वासघाती के विष का शोषण कर सकती है । इसके लिए जन-मत तैयार करने की आवश्यकता है ।

नाना : आपकी युक्ति अत्यन्त उपयोगी है किन्तु जन-मत तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता है और श्रीमन्त के पास न इतना समय है, न इतना धैर्य ।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : श्रीमन्त की जय !

नाना : क्या समाचार है ?

द्वारपाल : श्रीमती गंगाबाई और श्रीमंत नारायणराव इसी ओर आ रहे हैं ।

नाना : यह समय पूजा का है ! कोई बात नहीं ।

**राम :** अच्छा नाना ! तो अब मैं चलूंगा। आवश्यक कार्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

**नाना :** जैसी आपकी इच्छा ! मैं प्रणाम करता हूँ।

[ रामशास्त्री का प्रस्थान ]

**नाना :** (सोचते हुए) श्रीमंत के मन में यह प्रश्न बार-बार क्यों उठता है कि उनका दायित्व पूरा हुआ या नहीं !···उनका स्वास्थ्य···

[श्रीमंत नारायणराव और गंगाबाई का प्रवेश ]

**नारायण :** (आते ही) नाना ! हम दोनों तुमसे एक प्रश्न पूछने आये हैं। उत्तर दोगे ?

**गंगा :** यह प्रश्न मेरा है, नाना ! जो ये आपसे पूछने आए हैं।

**नाना :** अभी कुछ ही समय पहले आप दोनों का विवाह हुआ और दोनों के बीच में प्रश्न उठने लगे ?

**नारायण :** प्रश्न यह है कि विवाह के बाद पति-प नी को एक हो जाना चाहिए या दो बने रहना चाहिए।

**गंगा :** मैं कहती हूँ कि एक हो जाना चाहिए—ये कहते हैं कि दो बने रहना चाहिए।

**नारायण :** एक कैसे हो सकते हैं, नाना ? मेरा शरीर यह है—इनका शरीर वह है ! मैं जब सोता हूं, तो ये जागती हैं। जब मैं जागता हूं तो ये सोती हैं।

**गंगा :** जागने सोने से क्या हुआ, नाना ! विवाह तो जीवन की इकाई है। भले ही शरीर अलग है, मन तो एक है।

**नारायण :** मन कैसे एक है, गंगा ? मुझे वसन्त ऋतु अच्छी लगती है, कोकिल की कूक से तन-मन सिहर उठता है। तुम्हें वर्षा ऋतु अच्छी लगती है, पपीहे की "पिऊ कहाँ" में तुम्हारा मन रमता है। दो ऋतुएँ, दो पक्षी, दो शरीर, दो मन।

**गंगा :** दो ऋतुओं से दो मन नहीं हो जाते, नाना ! पपीहा पूछता है, कोकिल उत्तर देती है। प्रश्नोत्तर में तो एक ही बात होती है

दो का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? इसी तरह ये विवाह और प्रेम को अलग अलग मानते हैं । मैं कहती हूँ, हिन्दू धर्म में विवाह इसलिए किया जाता है कि प्रेम हो और प्रेम इसलिए किया जाता है कि विवाह हो, कारण कार्य बनता है और कार्य कारण बनता है ।

**नारायण :** ऐसा कहकर नाना ! गंगा मेरी स्वतंत्रता का अपहरण करना चाहती है । प्रेम प्रेम है और विवाह विवाह ! एक आत्मा का मिलन है, दूसरा शरीर का मिलन । दोनों की कोटि बिलकुल अलग ।

**गंगा :** देखिए, नाना ! ये प्रेम में अंकगणित का जोड़-बाक़ी जमाते हैं । तर्क की बात अलग है, व्यवहार की बात बिलकुल अलग । अगर शरीर इनके सामने न हो तो ये शून्य से प्रेम करेंगे ? ये क्यों मुझे बार-बार अपने पास बुलाते हैं—आकाश में मुँह उठाकर 'गंगा-गंगा' कहकर प्रेम करें ! शरीर के मिलन से ही आकांक्षा पवित्र होकर आत्मा तक उठती है । अतृप्तियों के हाहाकार से कभी आत्मा का संगीत नहीं बनता नाना !

**नारायण :** आप कुछ बोलते ही नहीं, नाना ! यह गंगा बातें करने में बहुत तेज़ है । हमेशा मुझे हरा देती है । मैं इसे प्रेम तो करता हूँ किन्तु चाहता हूँ कि प्रेम के अतिरिक्त भी तो कुछ हो । क्यों नाना ! प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ?

**गंगा :** है, क्यों नहीं ? लेकिन प्रेम की ज्योति सब वस्तुओं को उदास बना देती है । सूर्य है, किन्तु सूर्य की किरणें ही सारे संसार को जीवन का संदेश देती है ।

**नारायण :** गंगा ! तुम चुप रहो, नाना को कुछ कहने दो । नाना ! प्रश्न का उत्तर दो—हम एक है या दो है ।

**नाना :** श्रीमंत ! आपके नेत्र कितने हैं ?

नारायण : दो ।

नाना : और उन दो नेत्रों की दृष्टि ?

नारायण : एक ।

नाना : इसी तरह आप दो हैं किन्तु दृष्टि एक है ।

गंगा : धन्य हो, नाना ! आपने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया ।

नारायण : तो मैं गंगा की ही आज्ञा में चलूं !

नाना : नहीं, गंगा आपकी आज्ञा में चले ।

नारायण : तो यह कैसे संभव होगा ? दोनों की आज्ञाएँ अलग-अलग हैं ।

नाना : अलग-अलग क्यों हों ? दोनों की आज्ञाएँ जब सामने हों तो दोनों ही विवेक-बुद्धि से निर्णय करें—(**जोर देकर**) विवेक-बुद्धि से निर्णय करें कि इस समय कौन आज्ञा उचित है । जो आज्ञा उचित समझी जाय उसी पर दोनों चलें, चाहे वह आज्ञा आपकी हो या गंगा की ।

नारायण : (**शिथिल होकर**) मैं अभी से कह सकता हूँ कि आज्ञा गंगा की ही चलेगी !

नाना : (**हँसकर**) यदि आपका विवेक समझे तो श्रीमती गंगा की ही आज्ञा चलने दीजिए ।

गंगा : (**बुरा मानकर**) मैं आज से आपको कोई आज्ञा नहीं दूंगी । मेरा अधिकार ही क्या है ! मैं कौन होती हूँ अपनी आज्ञा मनवाने वाली ! (**सिसकी**)

नाना : अरे, अरे, श्रीमती गंगाबाई ! श्रीमंत नारायणराव का यह तात्पर्य नहीं था । वे तो सोचते थे कि प्रेम के अतिरिक्त वे अन्य कार्य भी करें; जैसे मुझे देखिए, मैं अपनी पत्नी से प्रेम भी करता हूँ और राजनीति की गुत्थियाँ भी सुलझाता हूँ ।

गंगा : (**करुण स्वर में**) तो मैं उन्हें अन्य कार्यों से कहाँ रोकती हूँ ! जी भरकर करें । मैंने तो इनसे एक ही बात कही थी कि ये

नाना : हाँ, विष ! काकी आनन्दी बाई इसीलिए आपको भाँति-भाँति के पकवान खिलाने का अभ्यास करा रही हैं। वे समय की प्रतीक्षा में हैं। जिस समय परिस्थिति अनुकूल होगी आपके पकवानों में विष मिला दिया जायगा।

नारायण : विष...विष मिला दिया जायगा ? तब तो मैं तुरन्त मर जाऊँगा ! तब मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। भूल कर भी नहीं जाऊँगा ! (गंगा से) गंगा ! तुम्हारी आज्ञा कितनी विवेक-बुद्धि पर सोची गयी है ! मैं नहीं जानता था कि तुम राजनीति भी जानती हो !

नाना : सती स्त्रियों को भविष्य का आभास सरलता से हो सकता है।

नारायण : हो सकता है। तब तो नाना ! अब मैं काका के यहाँ नहीं जाऊँगा। गंगा ! वास्तव में तुम महान् हो। अब तुम्हारी आज्ञा के बिना मैं एक पग भी बाहर नहीं रखूँगा ! चलो, कहाँ ले चलती हो ?

गंगा : चलिए मेरे कक्ष में !

नारायण : चलो, अभी चलो। (नाना से) नाना ! हम लोग जाते हैं। प्रणाम !

गंगा : आप राजनीति के ही आचार्य नहीं, गृहनीति के भी आचार्य हैं। प्रणाम।

नाना : (हाथ उठाकर) स्वस्ति।

[दोनों का प्रस्थान]

नाना : दोनों कितने सरल और भोले हैं ! नये पति-पत्नी की तकरार में कितनी मिठास होती है ! कामदेव कितना बड़ा कलाकार है कि एक आँसू से आँधी उठा देता है और एक मुस्कान से महल बना देता है। महल....(सोचता है। पुकारकर) द्वारपाल !

द्वारपाल : (नेपथ्य से) श्रीमंत की जय !

नाना : श्रीमन्त पंत प्रधान अभी अपने अंतरंग कक्ष में ही हैं ?

द्वारपाल : श्रीमन्त !

नाना : जब वे वहाँ से उठें तो मुझे सूचना देना !

द्वारपाल : जो आज्ञा, श्रीमन्त ! (प्रस्थान)

[द्वारपाल के प्रस्थान करते ही आनन्दी बाई का प्रवेश]

आनन्दी : (बड़े मीठे स्वर में) मैं आ सकती हूँ, नाना !

नाना : ओह काकी ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

आनन्दी : राजनीति के आचार्य बनो, नाना ! मैं भीतर आ सकती हूँ ?

नाना : श्रीमंत पेशवा की काकी को किस आज्ञा की आवश्यकता है ? सेवक स्वामिनी को आज्ञा दे ! मेरा परिहास न करो, काकी !

आनन्दी : नाना ! तुम इतने महान् हो कि पेशवा वंश तुम्हारे संकेत से ही आगे बढ़ सकता है ।

नाना : काकी ! आपकी वाणी कितनी मधुर है ! बड़े से बड़ा विरोधी भी आपकी वाणी के सामने अपना शस्त्र डाल देगा !

आनन्दी : तुम भी चतुराई से बातें करते हो, नाना ! नारायणराव यहाँ आया था ?

नाना : आये थे, काकी !

आनन्दी : कहाँ गया ?

नाना : मैं नहीं जानता ।

आनन्दी : कहीं तुम्हीं ने उसे आने से तो नहीं रोक दिया ? आज बड़ी देर तक मैं उसके भोजन की प्रतीक्षा करती रही । बड़े मधुर पक्वान मैंने उसके लिए बनाये थे ! अपने हाथों से । अपने हाथों से ही उसे आज खिलाती !

नाना : आप कितनी महान् हैं, काकी ! कि आपका चिरंजीव बाजीराव भी वह प्रेम नहीं पा सका जो आपने श्रीमंत नारायणराव को दिया है । श्रीमंत नारायणराव बड़े भाग्यशाली हैं !

आनन्दी : कभी-कभी दूसरे बच्चे अपने बच्चों से अधिक प्यारे लगते हैं । फिर पेशवा-वंश के बच्चे भगवान गजानन के रूप ही तो हैं । नारायणराव को खिलाती हूँ तो लगता है, भगवान् गजानन को ही खिला रही हूँ !

नाना : आप बहुत भक्त हैं, काकी ! पर श्रीमंत नारायणराव को आप पकवान न खिलाएँ तो बड़ी कृपा हो !

आनन्दी : नाना ! मैं तुम्हारी बात समझी नहीं। पकवान खिलाने में कृपा होती है अथवा न खिलाने में ?

नाना : न खिलाने में आपकी कृपा होगी ।

आनन्दी : पहेली बूझ रहे हो ?

नाना : श्रीमंत नारायणराव का स्वास्थ्य आजकल ठीक नहीं है। पकवान खिलाने से उनका स्वास्थ्य और खराब हो जायगा !

आनन्दी : मुझे उसके स्वास्थ्य की चिन्ता तुमसे अधिक है, नाना !

नाना : यह तो स्वाभाविक है, काकी !

आनन्दी : फिर पकवान खाने से तो उसका स्वास्थ्य और अच्छा होगा, नाना ! तुम भी किसी दिन मेरा पकवान खाना ।

नाना : सेवक का सौभाग्य ऐसा नहीं है। और श्रीमंत नारायणराव का भी सौभाग्य ऐसा नहीं होगा ।

आनन्दी : नारायणराव का सौभाग्य नहीं होगा ? मैं कुछ समझी नहीं ।

नाना : मैं भी पहले नहीं समझा था, काकी ! मैंने तो एक स्वप्न देखा, तब समझा ।

आनन्दी : स्वप्न देखा !

नाना : हाँ, कल ही मैंने स्वप्न देखा कि आपने श्रीमंत नारायणराव को अपने हाथ का पकवान खिलाया और···और···

आनन्दी : और···और क्या !

नाना : मैंने बड़ा बुरा स्वप्न देखा है, काकी ! मैं न कहूँ तो अच्छा है ।

आनन्दी : नहीं···नहीं···अवश्य कहो ! स्वप्न कह देने से स्वप्न का दोष मिट जाता है ।

नाना : मैंने स्वप्न में देखा काकी ! कि (**जैसे दूर क्षितिज में देखते हुए**) श्रीमंत नारायणराव आपके समीप ही आसन पर बैठे हैं··

आप उनसे मीठी मीठी बातें कर रही हैं·· सेविका भोजन लेकर आती है·····आँखों से कुछ संकेत करती है··· सामने भोजन का थाल···रखती है···आप पकवान हाथ से··· उठाती हैं···श्रीमंत नारायणराव से कहती हैं—मुँह खोलो··· आप शीघ्रता से···पकवान खिला देती हैं और···दो क्षण बाद·····

आनन्दी : (तीव्रता से)···दो क्षण बाद ?

नाना : दो क्षण बाद···श्रीमंत नारायणराव सिर पकड़ लेते हैं। उठने की कोशिश करते ही गिर पड़ते हैं···दासियाँ दौड़ कर आती हैं! श्रीमंत नारायणराव बोलने की कोशिश करते हैं···उनके मुँह से शब्द लड़खड़ाकर निकलते हैं···आँखें फिर जाती हैं··· और···और दो क्षण बाद ही श्रीमंत नारायणराव की मृत्यु···

आनन्दी : (तीव्र स्वर में) नाना !

नाना : यह तो स्वप्न है, काकी !

आनन्दी : नाना ! तुम मेरा अपमान कर रहे हो !

नाना : आपने ही तो स्वप्न सुनाने का आग्रह किया।

आनन्दी : मैं यह नहीं जानती थी कि तुम्हारे संकेत इतने पैने होते हैं।

नाना : यदि आप को चुभे हों तो मैं क्षमा चाहता हूँ।

आनन्दी : नाना ! तुम समझते हो कि मैं बातों का अर्थ नहीं समझती। इस लाछन लगाने के कारण तुम दंड के भागी होगे।

नाना : तो क्या वास्तव में मेरा स्वप्न सत्य है ?

आनन्दी : नाना ! तुम समझते हो कि तुम्हारे बातों की व्यंजना मैं नहीं समझ सकती। तुम अपनी बातों के मखमली म्यान में कपट की छुरी छिपाये हुए हो !

नाना : काकी ! सेवक के सम्मान का भी ध्यान रक्खें !

आनन्दी : सम्मान ! तुम्हें तो अपमानित कर राज्य से निर्वासित किया जाना चाहिए !

नाना : यह उस समय सम्भव होगा जब काका रघुनाथराव अभी तक किये गये अपने असफल विद्रोह में सफल हो जायेंगे !

आनन्दी : नाना ! अपनी जीभ काबू में रक्खो, नहीं तो वह कटवा दी जायगी । तुम आनन्दी बाई की शक्ति नहीं जानते ?

नाना : जानता हूँ, काकी ! यदि मेरी जीभ काट दी जायगी तो महाराष्ट्र के प्रत्येक वृक्ष की पत्तियाँ जीभ बनकर आपके षड्यंत्रों की घोषणा करेंगी ! मैं अत्यन्त मधुर-भाषिणी काकी को इस बात की भी सूचना दे दूं कि काका रघुनाथराव के पेशवा-पद का स्वप्न झूठा हो गया और वे श्रीमन्त पेशवा की शरण में आ चुके हैं ।

आनन्दी : क्या यह बात सत्य है ?

नाना : काकी ! मुझे दुःख इसी बात का है कि काका का स्वप्न झूठा हो गया और मेरा स्वप्न सच्चा । मैं नहीं चाहता था कि मेरा स्वप्न सच्चा हो !

आनन्दी : (आक्रोश से) तुम अपनी राजनीति में झूठ भी बोल सकते हो । मैं अभी जाकर देखती हूँ ।

[ शीघ्रता से प्रस्थान ]

नाना : काकी को प्रणाम करता हूँ । (स्वगत) राज्य में भयानक षड्यंत्र चल रहे हैं । इनसे महाराष्ट्र को मुक्ति कब मिलेगी !

[ नेपथ्य में समीप के मंदिर में कीर्तन होता है । नाना उस ओर देखकर प्रणाम करता है और ध्यानमग्न मुद्रा में सुनता है ।

शरण आले याचे न पाहसी अवगुण
कृपे चें लक्षण तुज साजे।
त्रिभुवनी समर्थ उदार मना चा
कृपालू दीना चा बाद तुझें।
गजेन्द्र गणिकेचो राखिली तुवा लाज
उद्धरिला द्विज अजामिल

धीरे-धीरे कीर्तन समाप्त होता है। [द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : श्रीमन्त की जय ! श्रीमन्त, पंत प्रधान इधर ही आ रहे हैं।

नाना : आ रहे हैं ? आगे चलो। मैं भी आता हूँ।

[द्वारपाल का प्रस्थान। नाना अपनी पगड़ी सीधी कर तथा वस्त्रों को ठीक कर द्वार तक आगे बढ़ जाता है। तथा दोनों हाथ उठाकर कहता है:—पंत प्रधान की जय ! ]

[पेशवा माधवराव हरिपन्त फड़के के कंधे का सहारा लेकर प्रवेश करते हैं। ]

माधव : (शिथिल स्वर में) चारों दिशाओं में विजय प्राप्त कर महाराष्ट्र की सेनाएँ पूना में लौट आईं। आज हैदर को पराजित कर सेनापति पटवर्द्धन भी अपनी सेना सहित आ गये। यह सब तुम्हारी विलक्षण बुद्धि है, नाना ! आज मैं तुम्हें उसका पुरस्कार देने आया हूँ।

नाना : श्रीमन्त ! यह मेरी विलक्षण बुद्धि नहीं, यह आपका उत्साह, साहस और प्रबल पराक्रम है जिसने महाराष्ट्र के एक छोर से दूसरे छोर तक एक नवीन चेतना का सृजन कर दिया है। आज पानीपत की एक हार, हज़ार जीतों में बदल गयी है। पानीपत का प्रतिशोध लेने के सम्बन्ध में आपका जो प्रण था, वह उसी प्रकार पूर्ण हुआ है जिस प्रकार वसन्त शिशिर से शीत का प्रतिशोध ले।

माधव : (मुस्कुराकर) जब तुम राजनीतिक भाषा में कविता मिला देते हो तो मुझे मालूम होता है जैसे तलवार की झनकार हो, जिसे सुनने की प्यास कभी नहीं बुझती। तुमने पानीपत में हज़ारों वीरों की मृत्यु देखी। मालूम होता है उन वीरों ने मरते समय अपनी शक्ति और प्रतिभा तुम्हें सौंप दी। इसीलिए तुम इतने निर्भीक राजनीतिज्ञ हुए। बोलो, नाना! महाराष्ट्र की इस विजय के फलस्वरूप तुम्हें क्या पुरस्कार चाहिए? मेरे बाहुओं में इस समय समस्त भारत की सम्पदा है। जो माँगो, वह निस्संकोच तुम्हें दूंगा।

नाना : आप महाराष्ट्र के अभ्युदय और गौरव से सुखी और संतुष्ट हैं, यही मेरा पुरस्कार है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहता, श्रीमंत!

माधव : तुमने अपनी बात कही, मुझे भी तो अपनी बात कहने का अधिकार है। तुमने आज तक जीवन में मुझसे कभी कुछ नहीं माँगा। आज भगवान् गजानन के अभिषेक के बाद कीर्तन-समारोह के बाद कुछ देना चाहता हूँ। यों तो मैं तुम्हें सभी कुछ दे सकता हूँ, परन्तु नाना! मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी इच्छा से माँगो! मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा यदि तुम्हारी इच्छा के अनुरूप मैं पुरस्कार सुसज्जित कर सकूँ।

हरिपंत : जब श्रीमन्त इतने प्रसन्न हैं, नाना! तो तुम्हें अवश्य कुछ माँगना चाहिए।

नाना : तब माँगता हूँ, श्रीमन्त!

माधव : जिह्वा के साथ यदि तुम अपने रोम-रोम से माँगो तब भी मैं तुम्हें दूंगा, नाना! तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ।

नाना : तब, श्रीमन्त! मैं आपसे यह माँगता हूँ कि आप सौ वर्ष तक जीवित रहकर महाराष्ट्र की रक्षा करें!

माधव : (आहत स्वरों में) यह तुम क्या माँगते हो, नाना ! मैं जब तक जीवित हूँ तब तक तो महाराष्ट्र की रक्षा में समर्पित ही हूँ किन्तु सौ वर्ष तक जीवित रहना असंभव है !

नाना : इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं माँगना चाहता !

माधव : (शिथिल-स्वरों में) तब मैं यह नहीं दे सकता। भगवान् गजानन से माँगो। नाना ! तुमने मुझे निराश कर दिया ! मैं दिनों-दिन डूबता जा रहा हूँ। मेरा स्वास्थ्य सौ वर्ष तो क्या एक महीने भी साथ नहीं देना चाहता !

नाना : अवश्य साथ देगा, श्रीमंत ! आपने जनता-जनार्दन की सेवा की है। भूपति और भिखारी पर समान रूप से आपने न्याय और दया का वरद हस्त रक्खा है। क्या उनकी मंगल कामनाएँ आपका साथ नहीं देंगी ? दोनों के प्रतिपालक, दुखियों के रक्षक होकर आप कितने पुण्यशील हैं, क्या भगवान् गजानन आपको शक्ति नहीं देंगे ?

माधव : जितनी आवश्यक थी, वह उन्होंने दी। सम्भवतः अब मेरी आवश्यकता महाराष्ट्र को न हो ! पूर्णिमा के अनन्तर चन्द्रमा की कलाएँ भी तो घटने लगती हैं, नाना !

नाना : आज आपको ज्वर तो नहीं है, श्रीमंत ?

माधव : कल से कुछ अधिक है। इसलिए तुम्हारे पास ही विश्राम लूँगा।

हरिपंत : यद्यपि वैद्य ने बहुत विचार करने के बाद औषधि दी, किन्तु उससे लाभ कुछ नहीं हुआ।

माधव : लाभ की आवश्यकता भी नहीं है, हरिपंत ! मैंने आज वैद्य से कहा कि वैद्यराज ! ज्वर की उपाधियाँ भले ही मुझे सब तरह से घेर लें किन्तु तुम मुझे ऐसी औषधि देते रहना जिससे मेरी वाणी खुली रहे और मैं अंतिम समय में कह सकूँ—भगवान् गजानन ! मेरे महाराष्ट्र को सुरक्षित रखना।

**नाना :** आपकी वाणी में शक्ति है और वह सदैव ही रहेगी !

**माधव :** कह नहीं सकता, नाना ! मैं कभी-कभी अपने आपसे युद्ध करता हूँ । संत तुकाराम का एक अभंग है :

तुका म्हणें मनासी संवाद
आपुलाचि वाद आपणास !

इसका क्या अर्थ है, हरिपंत ?

**हरिपंत :** श्रीमंत ! इसका अर्थ है—तुका अपने मन से ही बातचीत करता है । उसके अभंगों में स्वयं से किया गया स्वयं के सम्बन्ध में वाद-विवाद है !

**माधव :** मैं स्वयं अपने सम्बन्ध में वाद-विवाद करता हूँ, नाना ! कि मेरे कंधों पर जो दायित्व था, वह पूर्ण हुआ या नहीं । जब मैंने स्वयं संतोषजनक उत्तर नहीं पाया तो न्यायमूर्ति रामशास्त्री से पूछा ।

**नाना :** रामशास्त्री इस सम्बन्ध में मुझसे कह रहे थे । उन्होंने क्या उत्तर दिया श्रीमंत को ?

**माधव :** उन्होंने बड़ा विचित्र उत्तर दिया । उन्होंने उत्तर दिया—'श्रीमंत ! आप अपने उत्तरदायित्व की एक संख्या निर्धारित कर लीजिए उसमें आप उतने दिनों की संख्या से भाग दीजिए, जितने दिनों आपकी तलवार म्यान [illegible] रही है । यदि कुछ शेष बचे तो

नाना : यह कौन सा दायित्व है, श्रीमंत ?

माधव : काका रघुनाथराव का विद्रोह । सब प्रकार की सुविधाओं और समृद्धियों के होते हुए भी उनके मन में साम्राज्य-लिप्सा है । स्वयं पेशवा बनने की तृष्णा में उन्होंने महाराष्ट्र की समस्त मर्यादाओं को धूल की तरह उड़ा दिया ! नाना ! तुमने ही कहा था कि श्रीमंत ! पेशवा-पद उन्हें सौंप दीजिए और अलग हो जाइए जिससे गृह-विद्रोह की आग में हमारा साम्राज्य नष्ट न हो । और मैंने उन्हें पेशवा-पद सौंप दिया । किन्तु पेशवा होने के बाद उन्होंने जनता पर क्या-क्या अत्याचार और अनाचार नहीं किए ? मैं इसे कैसे सहन कर सकता था । मैंने अपनी सेना से काका को पराजित कर उन्हें बन्दी किया ।

हरिपंत : अब तो वे आपकी शरण में हैं, श्रीमंत !

माधव : किन्तु मुझे सकोच होता है कि मेरे काका मेरी शरण में हों । आज मैं उन्हें मुक्ति देना चाहता हूँ । उनका हृदय महाराष्ट्र के प्रति स्वच्छ करना चाहता हूँ ।

नाना : यदि उनका हृदय स्वच्छ हो जाय तो आपके दायित्व की पूर्ति होगी और हमारा सौभाग्य होगा, किन्तु श्रीमंत ! काकी आनन्दी बाई के हृदय में रानी बनने की अदम्य आकांक्षा है । वे किसी भी उपाय से राज्य की अधिकारिणी बनना चाहती हैं । श्रीमत नारायणराव को विष दिया जा सकता है, उनकी हत्या भी की जा सकती है ।

माधव : उस भोले नवनीत की भाँति कोमल नारायण की हत्या ! नाना ! हत्या का नाम न लो । यह कलक पेशवा-वंश को नष्ट कर देगा, यह कलंक गंगा-जल से भी धोया न जा सकेगा !

नाना : तो काका रघुनाथराव के साथ काकी आनन्दी बाई भी महल में होंगी । दोनों को ही बुलवा कर आप बातें करें । सभव है, आपके वचनों से उनके मन का पाप कट जाय ।

माधव : ठीक है। हरिपंत ! तुम जाओ और अपने साथ शीघ्र ही काका और काकी को साथ लेकर आओ। मैं यहाँ आने की सूचना उन्हें भिजवा चुका था, वे आने के लिए तैयार भी होंगे।

हरिपंत : जो आज्ञा। (प्रस्थान के लिए उठते हैं।)

नाना : और सुनो, हरिपंत ! साथ ही न्यायमूर्ति रामशास्त्री और श्रीमंत नारायणराव के समीप भी सूचना भिजवा दो कि वे श्रीमंत पंत प्रधान के महल के बाहरी कक्ष में आने की कृपा करें। श्रीमंत ने उनका स्मरण किया है।

हरिपंत : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

माधव : नाना ! यह तुमने अच्छा किया कि नारायणराव और न्याय-मूर्ति रामशास्त्री को भी बुलवा लिया। नारायणराव भविष्य का दीपक है और न्यायमूर्ति भविष्य के संरक्षक। दोनों की उपस्थिति से काका राघोवा के मन का कलुष नियंत्रण में रखा जा सकता है। तुम बहुत दूरदर्शी हो, नाना !

नाना : श्रीमंत ! यदि क्षमा करें तो एक बात कहने का साहस करूँ। काका राघोवा उतने भयानक नहीं हैं जितनी काकी आनन्दी बाई। और काकी जैसा चाहती हैं, वैसा ही कार्य काका करते हैं। यदि सत्य का अन्वेषण किया जाय तो काकी ही भयानक षड्यंत्रकारिणी हैं।

माधव : फिर काकी को किस भाँति सही रास्ते पर लाया जा सकता है ?

नाना : यदि दोनों को परस्पर मिलने न दिया जाय !

माधव : यह कैसे संभव है, नाना ! कि पति और पत्नी एक दूसरे से अलग कर दिये जावें ! फिर वे मेरे वरिष्ठ हैं। यह अमर्यादित कार्य मुझसे कैसे हो सकता है ?

नाना : हमारे देश का इतिहास इन्हीं छोटे-छोटे संकोचों में संकुचित हुआ है। हमारी छोटी सी सद्भावना कभी-कभी बड़ी विपत्तियों की सूत्रधारिणी बनी है।

माधव : तुम्हारा कहना सही है, नाना ! हमारी न्याय-बुद्धि अनेक बार शत्रुओं की शक्ति बन गयी है, यह मैं मानता हूँ ।

नाना : श्रीमंत ! कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि भगवान् अपनी इस क्रीड़ा-भूमि भारत को क्या नष्ट करना चाहते हैं ? मात्र परिस्थितियों के योग से कभी-कभी देश की अपार क्षति हुई है । हमारे देश के लोग सहज ही महत्वाकांक्षी हो जाते हैं और कोई भी व्यक्ति उनके स्वार्थ में योग देकर पंक्ति में फूट डाल देता है । इस समय कम्पनी के कर्मचारियों का ध्येय भी हमारे बीच में फूट डाल देना है ।

माधव : इस फूट से देश को बचाओ, नाना !

[हरिपंत का प्रवेश]

हरिपंत : श्रीमंत ! काका रघुनायराव और काकी सेवा में उपस्थित है ।

माधव : दोनों को सादर ले आओ !

हरिपंत : जो आज्ञा । (प्रस्थान)

नाना : श्रीमंत ! काकी आनन्दी बाई को ममता से जीतने का प्रयत्न करें और काका रघुनायराव को राष्ट्रीय मनोभाव से ।

माधव : जब तुम मेरे साथ हो, नाना ! तो मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है । भगवान् गजानन इस समय हमारी रक्षा करें !

[ काका रघुनायराव और काकी आनन्दी बाई का हरिपंत के साथ प्रवेश ]

माधव : काका और काकी मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

नाना : सेवक को भी आशीर्वाद दें ।

आनन्दी : आशीर्वाद तो भगवान् गजानन का चाहिए । हम लोग किसी भाँति भी योग्य नहीं हैं ।

नाना : योग्यता कस्तूरी की भाँति होती है, काकी ! जिसकी सुगंधि अपने सम्पुट को पार कर दूर-दूर तक फैल जाती है, कोमल

की भाँति नहीं जो स्वयं तो काला है और जो कोई उसे छूता है, वह भी काला हो जाता है।

काका : यह तो तुमने सिद्ध कर ही दिया, नाना ! कि मैं कोयला हूँ। स्वयं काला हूँ और छूने वाले को भी काला करता हूँ फिर मुझे यहाँ क्यों लाया गया ?

माधव : काका ! आप स्वयं क्यों अपने प्रति इतनी हीन-भावना रखते हैं ? आप तो कस्तूरी की भाँति इसीलिए हैं कि आप पेशवा वंश में उत्पन्न हुए हैं। नाना ने तो केवल योग्यता की परिभाषा कही है।

आनन्दी : तो इस परिभाषा के अनुसार योग्य तो वे हैं, श्रीमंत ! जो आप का साथ देते हैं, हम लोग कैसे योग्य होंगे.....

माधव : क्योंकि आप हमारा साथ नहीं देतीं ? यह स्वयं अपने मुख से स्वीकार कर रही हो, काकी ! क्यों साथ नहीं देतीं ? देखो, मैं तुम्हारे पुत्र बाजीराव के समान ही हूँ, तुमने मुझे गोद में खिलाया है। मैंने जीवन का पाठ अपनी माता गोपिका बाई से नहीं, तुम्हीं से सीखा है। काकी ! तुमने अपना नाम मेरे जीवन में सार्थक किया है, मैं आनन्द से भर गया हूँ। फिर जब मेरा स्वास्थ्य दिनोंदिन गिर रहा है, तब मुझे अपनी उपेक्षा का दंड क्यों दे रही हो ?

आनन्दी : माधवराव ! तुम श्रीमंत पेशवा ! नाना तुम्हारे मंत्री ! मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैं तुम लोगों को दंड दूंगी ? जब पेशवाई मजे में चल रही है तब हम लोगों की उपेक्षा का महत्व ही क्या है ?

माधव : है। और बहुत अधिक महत्व है, काकी ! जैसे किसी का विवाहोत्सव हो ! गीत और संगीत हो। वस्त्र और आभूषण हों, परिजन और पुरजन हों, प्रकाश और सजावट हो किन्तु यदि मंडप

में मंगल कलश न हो ! तो ? तो इन सबका कोई महत्व नहीं । उत्सव अशुभ है । उसी प्रकार पेशवाई का डंका गूंजता हो किन्तु यदि मंगल कलश की भाँति तुम्हारी दृष्टि अनुकूल न हो तो, काकी ! मेरे लिए सब व्यर्थ है । काकी ! एक बार मुख से कहो कि तुम अनुकूल हो ! तुम्हारा माधव ! तुमसे प्रार्थना करता है कि गृह-कलह से समस्त महाराष्ट्र का नाश न हो । तुम मुझे दंड दो यदि मुझसे कोई भूल हो ! और यदि भूल न हो तो मुझे प्यार करो, काकी ! मैं तुम्हारा माधव हूँ ।

आनन्दी : मैं तुम्हारी आत्मीयता से प्रसन्न हूँ, माधव ! किन्तु तुमने हमारी गति-विधि पर नियंत्रण क्यों लगा दिया ?

माधव : यह उत्तर काका ही दे सकते हैं । मैंने इनसे कहा—काका ! यह राज्य तुम्हारा है । तुम पेशवा बन जाओ । सारी सेनाओं का संचालन तुम करो । मैं केवल तुम्हारा सेवक–अनुचर–दास–भृत्य ! जो समझो । वही बनकर रहूँगा । ये पेशवा बनें । मैंने समझा, महाराष्ट्र का स्वर्ण-युग प्रारंभ हुआ किन्तु इन्होंने पेशवा होते ही राज्य के समस्त हितैषियों को पदच्युत किया । राज्य पर अत्याचार करने प्रारंभ किए । विदेशी कम्पनी के एजेंट मास्टिन से गुप्त संधि की । उन्हें महाराष्ट्र की भूमि दी, किले दिये । अव्यवस्था से जनता त्राहि-त्राहि कर उठी । मैं क्या करता ? काकी ! मैंने जनता के हित के लिए इन्हें पराजित किया, राज्य हाथ में लिया, फिर भी इन्हें राज्य-द्रोह का दंड नहीं दिया, इन पर प्रतिबन्ध मात्र लगा दिया । बतलाओ, काकी ! इसमें मैंने कुछ अनुचित किया ?

आनन्दी : तुमसे कुछ अनुचित नहीं हुआ, माधवराव !

माधव : तो काकी ! तुम अब काका को समझा दो । अब भी ये राज्य के स्वामी हैं । मुझे अपना शिशु जानकर मेरे अपराधों को [illegible]

करें। पेशवा न सही, ये राज्य के संरक्षक बनें। मैं आज इन्हें समस्त प्रतिबन्धों से मुक्ति देता हूँ। ये राज्य में जो चाहें करें—

नाना : मुझे क्षमा करें तो मैं इतना और निवेदन करूँगा कि ये राज्य में जो चाहें करें, विदेशियों से संधियाँ और अभिसंधियाँ न करें।

आनन्दी : तुम्हारे काका! जो उचित समझें करें, मैं तो गृह-स्वामिनी हूँ, राज्य-स्वामिनी नहीं।

नाना : काकी! यदि आप अनुकूल रहें तो काका आपसे आप अनुकूल हो जायगे। आप वसंत-श्री हैं, ये उपवन हैं। आप तरंग हैं, ये जल हैं। आप अर्थ हैं, ये शब्द हैं।

काका : तुम यह क्या कह रहे हो?

आनन्दी : ठीक कह रहे हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विवाद नहीं हो सकता। चिरंजीव माधव की बातें परिस्थितियों की दृष्टि से ठीक हैं।

माधव : मैं आपसे क्या कहूँ, काका! अपने हृदय की समस्त बातें काकी से निवेदन कर चुका हूँ। और इनका हृदय द्रवित भी हुआ है। यह संभव है कि मेरा कोई कार्य आपको कष्टकर हुआ हो। मैंने आपको युद्ध-क्षेत्र में हराया—आपको बन्दी बनाया—यह आपको अच्छा न लगा हो किन्तु यह कार्य माधवराव पेशवा ने किया—आपके भतीजे माधव ने नहीं। माधव तो सदैव आपका सेवक है। महाराष्ट्र के हित में आप भी वही करते जो मैंने किया है।

रघुनाथ : श्रीमंत पेशवा! यदि मैं यह कहूँ कि महाराष्ट्र के लिए मैंने जितने युद्ध किए—अपने प्राण संकट में डाले—इन सबका प्रतिदान क्या मुझे यही मिलना चाहिए कि मैं बन्दी बनाया जाऊँ?

माधव : काका! आप मुझे क्षमा करें, यदि मैं कहूँ कि ये सब युद्ध आपने अपने अधिकार के लिये किये। और यदि महाराष्ट्र के लिए किये तो आप इसका प्रतिदान क्या चाहते हैं! पुत्र अपने पिता की सेवा करता है तो क्या इसलिए कि पिता उस सेवा का मूल्य

धन-संपत्ति में चुकाये ? काका ! अनुचित अधिकार-लिप्सा देश की सेवा नहीं है । यदि सिंह शिकार करता है तो वह अपने लिए करता है, वन के अन्य प्राणियों के लिए नहीं ।

रघुनाथ : किन्तु सिंह को बन्दी बनाने का अधिकार किसी को नहीं है ।

माधव : यदि सिंह अपने अहंकार में कुएं के भीतर छलांग मार दे तो किसका दोष ! वह स्वयं अपने ऊपर विपत्ति को निमंत्रण देता है ।

रघुनाथ : किन्तु महाराष्ट्र का दुर्भाग्य है कि यह विपत्ति परिजनों के द्वारा लाई जाती है । राज्य में राजनीतिज्ञ कहे जाने वाले व्यक्ति यह विपत्ति लाते हैं । पूछिए नाना फड़नवीस से । आय-व्यय के लेखक पेशवा के परामर्शदाता बन जाते हैं !

नाना : काका ? क्षमा करें यदि धृष्टता हो ? फड़नवीस तो केवल परामर्शदाता बनते हैं किन्तु अनाधिकारी व्यक्ति पेशवा-पद प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं !

रघुनाथ : मर्यादा में रहो, नाना ! मैं स्वयं पेशवा-वंश में हूँ । राष्ट्र के हित में पेशवाई योग्य व्यक्ति को मिलनी चाहिए ।

नाना : इस योग्यता का निर्णय कौन करेगा ? आप स्वयं ? प्रजा इस योग्यता के निर्णय का अधिकार रखती है । और प्रजा ने अपना निर्णय दे दिया कि काका रघुनाथराव पेशवा होने के योग्य नहीं हैं । मैं कह सकता हूँ कि यदि श्रीमती काकी आनन्दी बाई पेशवा होने की इच्छा करतीं तो वे हो सकती थीं । किन्तु वे स्त्री हैं । इसलिए उनके पेशवा होने का प्रश्न ही नहीं उठता । वे पेशवा की पूज्या मात्र बनकर रहेंगी । क्यों काकी ! मेरा कहना यथार्थ है ?

आनन्दी : इसका उत्तर न दूं तो अच्छा है ।

रघुनाथ : यदि मैं इतना अयोग्य हूँ तो कंपनी के कर्मचारी मास्टिन के साथ मुझे रहना चाहिए । हैदर और निज़ाम की संगति करनी चाहिए ।

करें। पेशवा न सही, ये राज्य के संरक्षक बने। मैं आज इन्हें समस्त प्रतिबन्धों से मुक्ति देता हूँ। ये राज्य में जो चाहें करें—

नाना : मुझे क्षमा करें तो मैं इतना और निवेदन करूँगा कि ये राज्य में जो चाहें करें, विदेशियों से संधियां और अभिसंधियां न करें।

आनन्दी : तुम्हारे काका! जो उचित समझें करें, मैं तो गृह-स्वामिनी हूँ, राज्य-स्वामिनी नहीं।

नाना : काकी! यदि आप अनुकूल रहें तो काका आपसे आप अनुकूल हो जायगे। आप वसंत-श्री हैं, ये उपवन हैं। आप तरंग हैं, ये जल हैं। आप अर्थ हैं, ये शब्द हैं।

काका : तुम यह क्या कह रहे हो?

आनन्दी : ठीक कह रहे हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विवाद नहीं हो सकता। चिरंजीव माधव की बातें परिस्थितियों की दृष्टि से ठीक हैं।

माधव : मैं आपसे क्या कहूँ, काका! अपने हृदय की समस्त बातें काकी से निवेदन कर चुका हूँ। और इनका हृदय द्रवित भी हुआ है। यह संभव है कि मेरा कोई कार्य आपको कष्टकर हुआ हो। मैंने आपको युद्ध-क्षेत्र में हराया—आपको वन्दी बनाया—यह आपको अच्छा न लगा हो किन्तु यह कार्य माधवराव पेशवा ने किया—आपके भतीजे माधव ने नहीं। माधव तो सदैव आपका सेवक है। महाराष्ट्र के हित में आप भी वही करते जो मैंने किया है।

रघुनाथ : श्रीमंत पेशवा! यदि मैं यह कहूँ कि महाराष्ट्र के लिए मैंने जितने युद्ध किए—अपने प्राण संकट में डाले—इन सबका प्रतिदान क्या मुझे यही मिलना चाहिए कि मैं वन्दी बनाया जाऊँ?

माधव : काका! आप मुझे क्षमा करें, यदि मैं कहूँ कि ये सब युद्ध आपने अपने अधिकार के लिये किये। और यदि महाराष्ट्र के लिए किये तो आप इसका प्रतिदान क्या चाहते हैं! पुत्र अपने पिता की सेवा करता है तो क्या इसलिए कि पिता उस सेवा का मूल्य

हों। बिजली भूमि पर गिरती है, आकाश कभी भूमि पर नहीं गिरता।

आनन्दी : किन्तु नाना ! आकाश शून्य है। क्या हम लोगों का अधिकार शून्य की सीमा पर होगा ?

नाना : काकी ! जहाँ शून्य है, वहाँ सब कुछ होने की संभावना है। जहाँ पर कुछ है, वहाँ अन्य बातों का निषेध हो जाता है। इसीलिए ब्रह्म भी शून्य कहा जाता है क्योंकि वह शून्य होते हुए भी सब कुछ है।

माधव : काका ! नाना वेदान्ती हैं। काकी ! तो आज महाराष्ट्र के नाना पर गृह-विरोध शान्त हुआ। जय गजानन !

[ रामशास्त्री और नारायणराव का प्रवेश ]

नारायण : श्रीमंत को प्रणाम !

रामशास्त्री : श्रीमंत का मंगल हो !

माधव : न्यायशास्त्री ! आज मेरा अन्तिम दायित्व पूर्ण हुआ। आपने जो मेरे प्रश्न का उत्तर भेजा था उसके अनुसार मेरे दायित्व की एक संख्या शेष बची थी। वह आज इस रूप में पूरी हुई कि काका रघुनाथराव आज हम सबके बीच में महाराष्ट्र के साथ संरक्षक के रूप में यहाँ उपस्थित हैं।

रामशास्त्री : काका रघुनाथराव ने अपने संरक्षक होने का कोई प्रमाण दिया ?

आनन्दी : इसका प्रमाण यही है कि मैं इनके साथ हूँ।

रामशास्त्री : श्रीमती ! आप तो इनकी जीवन-संगिनी ही हैं। किन्तु साथ होने का अर्थ यह होना चाहिए कि जिस प्रकार सागर के साथ उसकी वेला हो ! सहस्रों सरिताओं का जल प्रतिक्षण सागर में मिलता है किन्तु वेला सागर को मर्यादा में ही रखती है। नहीं तो सारी भूमि सागर में निमग्न हो जाये।

आनन्दी : मातृत्व की भाँति मेरा पत्नीत्व भी जागृत है

रघुनाथ : ऐसी बातें न कहें, श्रीमन्त ! आप अधिक दिनों तक महाराष्ट्र की सेवा करेंगे। जैसे आप हैं, उसी भाँति नारायण भी है। दोनों ही एक वृन्त के दो फूल हैं।

नाना : और ये तभी सुरक्षित रहेंगे जब विद्रोह और फूट की आँधी न उठे। यदि यह आँधी न उठेगी तो महाराष्ट्र संसार में अमर रहेगा।

माधव : महाराष्ट्र अमर हो ! जब स्वयं काका और काकी नारायण का संरक्षण करेंगे तो उठने वाली आँधी भी वसन्त की मलय समीरण बन जायगी। न्यायमूर्ति ! अब तो मेरा दायित्व पूर्ण हुआ ?

रामशास्त्री : श्रीमंत ! जिस प्रकार आशा अनन्त है, उसी भाँति दायित्व भी अनन्त है। जिस प्रकार जीवात्मा पूर्ण होकर भी अपूर्ण है, उसी प्रकार दायित्व की भावना पूर्ण होकर भी अपूर्ण है।

माधव : न्यायशास्त्री ! आपका न्याय सर्वोपरि है। प्रयत्न करूँगा कि काका और काकी की और भी अधिक सेवा करूँ।

आनन्दी : कपूर की सुगंधि को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

नाना : कपूर की अपेक्षा मलय की सुगंधि कहें, काकी !

माधव : काकी ने "कपूर" शब्द उचित ही कहा क्योंकि प्रतिदिन मैं क्षीण होता जा रहा हूँ। किसी दिन वायु में लीन हो जाऊँगा ! आप लोगों के परस्पर प्रेम की सुगंधि मैं वायु के द्वारा दूर-दूर तक ले जा सकूँगा। नारायण ! तुम काका और काकी की सेवा करते हुए अनेक वर्षों तक प्रजा की सेवा करो, यही मेरी अभिलाषा है।

नारायण : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, श्रीमत !

रघुनाथ : श्रीमत ! आप विश्वास रक्खें, मैं अपने कर्त्तव्य का पालन सदैव ही करता रहूँगा। आपकी काकी की सहज बुद्धि मेरी सहायता करती रहेगी।

काकी : सहज बुद्धि के साथ मार्ग-दर्शन भी।

माधव : यह मैं जानता हूँ। न्यायशास्त्री! आपने भी पूज्य काका और काकी का आश्वासन सुना?

रामशास्त्री : यह आश्वासन साध्य हो और अपने ही पक्ष में विलास करे जैसे शीतलता जल में निवास करती है!

नाना : नाना! काका और काकी की सेवा तुम्हें भी करनी है।

नाना : श्रीमंत! यदि काका और काकी की मानसिक शान्ति किसी घटना से भंग होगी तो मैं उनकी मानसिक शान्ति को व्यवस्थित कर उनकी सेवा करूँगा।

[नेपथ्य में पुनः कीर्तन होता सुनाई पड़ता है—

शरण आले याचे न पाहसी अवगुण
कृपा चें लक्षण तुज साजे।
त्रिभुवनी समर्थ उदार मना 'चा
कृपालू दीना चा ब्रीद तुझे।
गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवा लाज
उद्धरिला द्विज अजामिला।]

[कीर्तन धीरे-धीरे मन्द पड़ता है।]

माधव : मेरे स्वास्थ्य की मंगल कामना के रूप में यह कीर्तन वा किया जाता है। भगवान् गजानन शक्ति दें कि मैं अपनी की अंतिम साँस तक महाराष्ट्र की सेवा कर सकूँ। मेरे सा सब 'भगवान् गजानन की जय' कहो।

समवेत स्वर : भगवान् गजानन की जय!

[नेपथ्य में फिर कीर्तन का स्वर उभरता
गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवा लाज
उद्धरिला द्विज अजामिला।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।

---

तृतीय अंक

# नाना फड़नवीस

**माधव :** यह मैं जानता हूँ। न्यायशास्त्री ! आपने भी पूज्य काका और काकी का आश्वासन सुना ?

**रामशास्त्री :** यह आश्वासन साव्य हो और अपने ही पक्ष में विलास करे जै शीतलता जल में निवास करती है !

**नाना :** नाना ! काका और काकी की सेवा तुम्हें भी करनी है।

**नाना :** श्रीमंत ! यदि काका और काकी की मानसिक शान्ति किसी से भंग होगी तो मैं उनकी मानसिक शान्ति को व्यवस्थि उनकी सेवा करूँगा।

[नेपथ्य में पुनः कीर्तन होता सुनाई पड़ता है—

शरण आले याचे न पाहसी अवगुण
कृपा चें लक्षण तुज साजे।
त्रिभुवनी समर्थ उदार मना 'चा
कृपालू दीना चा ब्रीद तुझे
गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवा लाज
उद्धरिला द्विज अजामिला

[ कीर्तन धीरे-धीरे मन्द पड़ता है।

माधव : मेरे स्वास्थ्य की मंगल कामना के रूप में यह किया जाता है। भगवान् गजानन शक्ति दें की अंतिम साँस तक महाराष्ट्र की सेवा सब 'भगवान् गजानन की जय' कहो।

मवेत स्वर : भगवान् गजानन की जय !

[नेपथ्य में फिर कीर्तन का स्

गजेन्द्र गणिकेची राखिली
उद्धरिला द्विज अजामि

[ धीरे-धीरे परदा गि

---

# तृतीय अंक

## नाना फड़नवीस

काल : २७ सितम्बर सन् १७७३

स्थान : पुरन्दर स्थित नाना फड़नवीस का प्रासाद

[संध्या समय ५ बजे। वर्षाकालीन संध्या का सूर्य अधिक अरुण होकर इस प्रासाद की खिड़की से अपनी स्वर्ण रश्मियों का स्वप्न-जाल कक्ष में बिछा रहा है जो समीपवर्ती पेड़ की पत्तियों के हिलने से एक क्षण में सिमिट कर फैल जाता है। खिड़की से दूर-दूर के वन-प्रान्त की शोभा दृष्टिगत होती है। कक्ष में हलके बैंगनी रंग के परदे पड़े हुए हैं। कक्ष में मयूराकृत कुर्सियाँ और तख्त मखमल से सजे हुए हैं, उन पर जरी का काम भी किया गया है। स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र लगे हुए हैं। दीवाल के मध्य में पेशवा नारायणराव का चित्र है, जिसमें वे मखमली मसनद पर तकिये के सहारे बैठे हुए हैं। मराठी पगड़ी, माथे पर त्रिपुण्ड, कानों में बड़े कुण्डल, गले में मोतियों की माला। हाथ में एक फरमान। चित्र के दोनों ओर ढाल और तलवार सुन्दर आकृति में सजे हुए हैं।

बाहर जाने के लिए जो द्वार है, उस पर रेशमी परदा पड़ा हुआ है। खिड़की के नीचे से अंतरंग कक्ष में जाने का मार्ग है। खिड़की के पीछे बाहरी मार्ग पर दो सैनिक हैं जो पहरा देने के क्रम में बारी-बारी से दीख पड़ते हैं।

कक्ष में तख्त के ऊपर मृत नारायणराव पेशवा की पत्नी श्रीमती गंगाबाई अत्यन्त तन्मयता से चित्र बना रही हैं। वे कभी-कभी कक्ष में लगे हुए पेशवा नारायणराव के चित्र की ओर देख कर फिर चित्र बनाने लगती हैं। उनके मुख पर करुणा और उत्सुकता की विचित्र भाव-मुद्रा है। उनकी अवस्था लगभग १७ वर्ष की है। दूर से किसी भिखारी के कण्ठ से एक नाथ के अभंग का आलाप सुन पड़ता है।

## तृतीय अंक

## नाना फड़नवीस

काल : २७ सितम्बर सन् १७७३

स्थान : पुरन्दर स्थित नाना फड़नवीस का प्रासाद

[संध्या समय ५ बजे। वर्षाकालीन संध्या का सूर्य अधिक अरुण होकर इस प्रासाद की खिड़की से अपनी स्वर्ण रश्मियों का स्वप्न-जाल कक्ष में बिछा रहा है जो समीपवर्ती पेड़ की पत्तियों के हिलने से एक क्षण में सिमिट कर फैल जाता है। खिड़की से दूर-दूर के वन-प्रान्त की शोभा दृष्टिगत होती है। कक्ष में हलके बैंगनी रंग के परदे पड़े हुए हैं। कक्ष में मयूराकृत कुर्सियाँ और तख्त मखमल से सजे हुए हैं, उन पर ज़री का काम भी किया गया है। स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र लगे हुए हैं। दीवाल के मध्य में पेशवा नारायणराव का चित्र है, जिसमें वे मखमली मसनद पर तकिये के सहारे बैठे हुए हैं। मराठी पगड़ी, माथे पर त्रिपुण्ड, कानों में बड़े कुण्डल, गले में मोतियों की माला। हाथ में एक फ़रमान। चित्र के दोनों ओर ढाल और तलवार सुन्दर आकृति में सजे हुए हैं।

बाहर जाने के लिए जो द्वार है, उस पर रेशमी परदा पड़ा हुआ है। खिड़की के नीचे से अंतरंग कक्ष में जाने का मार्ग है। खिड़की के पीछे बाहरी मार्ग पर दो सैनिक हैं जो पहरा देने के क्रम में बारी-बारी से दीख पड़ते हैं।

कक्ष में तख्त के ऊपर मृत नारायणराव पेशवा की पत्नी श्रीमती गंगा-बाई अत्यन्त तन्मयता से चित्र बना रही हैं। वे कभी-कभी कक्ष में लगे हुए पेशवा नारायणराव के चित्र की ओर देख कर फिर चित्र बनाने लगती हैं। उनके मुख पर करुणा और उत्सुकता की विचित्र भाव-मुद्रा है। उनकी अवस्था लगभग १७ वर्ष की है। दूर से किसी भिखारी के कण्ठ से एक नाथ के अभंग का आलाप सुन पड़ता है।

एक क्षण बाद एक दूसरी स्त्री प्रवेश करती है। वह मृत सदाशिवराव की पत्नी है। अवस्था लगभग २६ वर्ष की होगी। उसके मुख पर दुःख का आवेग अपेक्षाकृत कम है। उसका नाम पार्वती बाई है। वह अभंग का आलाप सुनने की मुद्रा में खिड़की तक बढ़ती चली जाती है। ]

पार्वती : (खिड़की के बाहर देखते हुए) संध्या के इस मनोरम समय में कितना मधुर आलाप है, गंगा ! पुरन्दर के इस दुर्ग में रहते हुए हमें कितने दिन बीत गये ! ऐसा संगीत नहीं सुना ! मालूम होता है जैसे किसी ने करुणा के धागे में आनन्द के फूल गूँथ दिये हैं !

गंगा : (चित्र बनाते हुए) ...के...धागे में...आनन्द के फूल !

[ उनका गला भर आता है । ]

पार्वती : हाँ, गंगा ! महाराष्ट्र की भूमि ही ऐसी है। चाहे जितने काँटे बो दिए जायँ, आनन्द के फूल कहीं न कहीं से निकल ही आते हैं ! (समीप आते हुए) अरे, तुम भी तो अपने चित्र में बहुत से फूल बना रही हो ! देखूं, तुम्हारा चित्र ! अरे, तुम्हारी आँखों में आँसू !

गंगा : (चित्र छिपाते हुए करुण स्वर से) नहीं, पार्वती बाई ! मेरा चित्र मत देखो !

पार्वती : क्यों, ऐसी क्या बात है ?

गंगा : मुझे लज्जा लगती है।

पार्वती : लज्जा लगती है ? किस बात की लज्जा ! चित्र दिखलाने में लज्जा ? चित्रकार को यदि चित्र दिखलाने में लज्जा आये तो फिर वह चित्र बनाना ही छोड़ दे ! चित्रकार तो चाहता है कि अधिक से अधिक आँखें उसके चित्रकी रूप-माधुरी का पान करें। उसकी सराहना करें !

गंगा : पर मैं अपना चित्र किसी को न दिखलाऊँगी।

पार्वती : श्रीमंत नाना फड़नवीस को भी नहीं ?

गंगा : नही, उन्हें भी नही ।

पार्वती : तो फिर चित्र बना ही क्यों रही हो ?

गंगा : करुणा के धागे मे कोई आनन्द का फूल गुंथ जाय, इसलिए ।

पार्वती : तुमने तो मेरी ही बात दुहरा दी, गंगा !

गंगा : हाँ, ताई ! तुमने मेरे हृदय में उठने वाले क्रन्दन को वाणी दे दी ! रोते-रोते मेरी आँखों में आँसू नही रहे, ताई ! (सिसकियाँ लेते हुए) दुर्भाग्य ने मुझे कितना रुलाया है, तुम जानती हो ! मेरी सुहाग की रेखा रक्त में डूब गयी ! मेरा रोम-रोम रोता रहा है । फिर भी मैं मर नही सकी ! मैं कितनी अभागिनी हूँ ! (सिसकियाँ)

पार्वती : तुम्हारी सिसकियों की पुकार से पेशवा नारायणराव लौटकर तो नहीं आ जायेंगे ! आँसू न बहाओ, गंगा ! ये आँसू अब मुझसे देखे नही जाते ! काका राघोबा और आनन्दी बाई को मैंने कितना समझाया । क्या नही कहा ! लेकिन कुछ नहीं ! दुर्भाग्य की जो ज्वाला जलनी थी, जल कर ही रही !

गंगा : उसी ज्वाला में, मैं भी जलना चाहती थी, ताई ! उनकी हत्या के बाद मैंने आनन्दी बाई से कहा—मेरी हत्या भी कर दो, काकी ! मुझे क्यों आग में जलने के लिए छोड़ रही हो ? मेरे पति की हत्या के लिए आपको हत्यारे खोजने पड़े । मेरी हत्या आपके ही हाथों हो जायगी ! पर उन्होंने मेरी प्रार्थना नही सुनी !

पार्वती : पिशाचिनी भी कभी प्रार्थना सुनती है ! रक्त पान करने वाली रक्त ही चाहती है अमृत नही । किन्तु गगा ! यही रक्त अग्नि-कुंड बनकर उनका नाश करेगा । उस अग्नि-कुंड का नाम जानती हो ? (एक-एक अक्षर पर जोर देकर) श्रीमत··· नाना··· फड़··· नवीस

गंगा : सचमुच कितने नीतिज्ञ और दूरदर्शी हैं, नाना । यदि वे न होते तो मैंने आत्म-हत्या कर ली होती !

पार्वती : उनके रहते कोई आत्म-हत्या नहीं कर सकता, गंगा ! पानीपत के युद्ध की बात तो पुरानी हो गयी किन्तु उसमें काम आने वाले तुम्हारे भाऊ कैलासवासी होकर भी न जाने कितनी बार मेरी आँखों के सामने आ जाते हैं ! कहते हैं—पार्वती ! पानीपत की हार को कौन जीत में बदल सकता है ? और तब ध्यानावस्थित होकर मैं कह देती हूँ—नाना फड़नवीस ।

गंगा : मुझे भी विश्वास है कि वे पानीपत की हार का कलंक अवश्य ही दूर कर देंगे । अब तो वे आते ही होंगे । किसी आवश्यक कार्य से बाहर गये हैं । शीघ्र ही आने को कह गये थे । अपनी सहज बुद्धि से कैसे-कैसे कार्य कर लेते हैं वे !

पार्वती : यह तो मैं भी जानती हूँ । चित्र बनाने में तुम्हारी रुचि देखकर उन्होंने चित्र-निर्माण की सामग्री तुम्हारे लिए क्यों ला दी, इसका कारण तुम जानती हो ?

गंगा : नहीं जानती, ताई ! मैं तो यही समझती हूँ कि वे मुझे बहुत चाहते हैं ।

पार्वती : नहीं, चित्र की सामग्री इसलिए ला दी है कि तुम चित्र बनाने में तन्मय रह कर अपना दुःख भूल सको ।

गंगा : ओह ! यह बात है ! सचमुच चित्र खींचते समय मेरी कल्पना न जाने कहाँ-कहाँ चली जाती है । इसी चित्र ने न जाने कितनी देर से मुझे उलझा रक्खा है ।

पार्वती : और यह चित्र तुमने मुझे दिखलाया भी नहीं ।

गंगा : क्या करोगी यह चित्र देखकर ? मेरे हृदय की ज्वाला में कभी-कभी एक फूल झाँक उठता है—उसी का यह चित्र है । कल्पना ही तो है !

पार्वती : वह कौन-सा फूल है ?

गंगा : उसे देखकर तुम मेरी हँसी तो नहीं उड़ाओगी ?

पार्वती : हँसी ! हँसी उड़ाने की क्या बात है ? फूलों का चित्र देखकर कोई हँसी उड़ाता है ?

गंगा : वह जीवित फूल है, मेरी गोद में जल्द ही आवेगा ।

पार्वती : यह बात है ? (मुस्कुरा कर) ओ हो ! तो अब अपने आँसुओं को सुखा डालो, गंगा ! अब तो सुख के दिन आने को हैं । पेशवा नारायणराव की सजीव स्मृति लेकर तुम जीवन से संघर्ष ले सकती हो । नाना फड़नवीस इस बात को जानते हैं ?

गंगा : जानते हैं, इसीलिए तो वे मुझे तुम्हारे साथ पूना से यहाँ पुरन्दर के दुर्ग में ले आये हैं । नहीं तो राघोबा काका न जाने क्या षड्यन्त्र करते !

पार्वती : वे तो षड्यंत्र करने में निपुण हैं । और गंगा ! मैं तुम्हें बतलाऊँ ? मैं भी यह बात जानती थी, यद्यपि तुमने इसे छिपाने के बहुत प्रयत्न किये । सच है, आँसुओं की धारा में बहते हुए फूल की ओर किसे ध्यान होता ? अच्छा देखूँ, तुम्हारा चित्र !

गंगा : मुझे लज्जा लगती है । ऐसा लगता है जैसे मेरा शोक झूठा है, मेरे आँसुओं की धारा का प्रवाह उलटा बहने लगा है, मेरी विपत्ति विद्रूपक बन गयी है !

पार्वती : ऐसी बात नहीं है, गंगा ! एक फूल मुरझाता है, उसका स्थान दूसरा फूल ग्रहण कर लेता है । क्या पहले फूल के मुरझाने से दूसरे फूल की सुगंधि कम हो जानी चाहिए ? दूसरे फूल को तो अधिक उमंग के साथ खिलना चाहिए । देखूँ, तुम्हारे होने वाले शिशु का चित्र ! (चित्र हाथ में ले लेती है ।) ओहो ! बिलकुल पेशवा नारायणराव की ही आकृति है ! ··· गोरा गुलाबी, फूल-सा मुख ···नई खिली हुई कलियों-सी आँखें ! कनेर के फूल की तरह कान ! अब मालूम हुआ कि तुम इस कक्ष में ही आकर क्यों चित्र खींचा करती थीं । इस कक्ष में ––– नारायणराव का यह चित्र लगा है न ! (संकेत —

**पार्वती :** उनके रहते कोई आत्म-हत्या नहीं कर सकता, गंगा ! पानीपत के युद्ध की बात तो पुरानी हो गयी किन्तु उसमें काम आने वाले तुम्हारे भाऊ कैलासवासी होकर भी न जाने कितनी बार मेरी आँखों के सामने आ जाते हैं ! कहते हैं—पार्वती ! पानीपत की हार को कौन जीत में बदल सकता है ? और तब ध्यानावस्थित होकर मैं कह देती हूँ—नाना फड़नवीस ।

**गंगा :** मुझे भी विश्वास है कि वे पानीपत की हार का कलंक अवश्य ही दूर कर देंगे । अब तो वे आते ही होंगे । किसी आवश्यक कार्य से बाहर गये हैं । शीघ्र ही आने को कह गये थे । अपनी सहज बुद्धि से कैसे-कैसे कार्य कर लेते हैं वे !

**पार्वती :** यह तो मैं भी जानती हूँ । चित्र बनाने में तुम्हारी रुचि देखकर उन्होंने चित्र-निर्माण की सामग्री तुम्हारे लिए क्यों ला दी, इसका कारण तुम जानती हो ?

**गंगा :** नहीं जानती, ताई ! मैं तो यही समझती हूँ कि वे मुझे बहुत चाहते हैं ।

**पार्वती :** नहीं, चित्र की सामग्री इसलिए ला दी है कि तुम चित्र बनाने में तन्मय रह कर अपना दुःख भूल सको ।

**गंगा :** ओह ! यह बात है ! सचमुच चित्र खींचते समय मेरी कल्पना न जाने कहाँ-कहाँ चली जाती है । इसी चित्र ने न जाने कितनी देर से मुझे उलझा रक्खा है ।

**पार्वती :** और यह चित्र तुमने मुझे दिखलाया भी नहीं ।

**गंगा :** क्या करोगी यह चित्र देखकर ? मेरे हृदय की ज्वाला में कभी-कभी एक फूल झाँक उठता है—उसी का यह चित्र है । कल्पना ही तो है !

**पार्वती :** वह कौन-सा फूल है ?

**गंगा :** उसे देखकर तुम मेरी हँसी तो नहीं उड़ाओगी ?

मातृत्व वीर पुत्र से ही धन्य बने। वीर छत्रपति शिवाजी की भांति ही तुम्हारा पुत्र महाराष्ट्र-जननी की सेवा करे !

गंगा : तुम बहुत अच्छी हो, ताई ! तुम्हारी प्रार्थना भगवान् गजानन अवश्य सुनेंगे।

[ बाहर तुरही का नाद ]

पार्वती : देखो, भगवान् गजानन ने मेरी और तुम्हारी प्रार्थना सुन ली ! चलो, पूजा का समय हो गया। भगवान् गजानन के मन्दिर में जाने की सूचना हो गयी।

[परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : स्वामिनी की जय हो ! पूजा का समय हो गया।

गंगा : ताई के साथ में आ रही हूँ। पूजा की सब सामग्री प्रस्तुत है ? सौदामिनी !

सौदामिनी : प्रस्तुत है, स्वामिनी ! सतारा से दो श्रीमंत आये हैं। वे अपने को आपका सम्बन्धी बतलाते हैं। आपसे भेंट करना चाहते हैं। मैंने उन्हें अंतरंग कक्ष में बिठला दिया है।

गंगा : श्रीमंत नाना जी आये ?

सौदामिनी : अभी नहीं आये।

गंगा : नहीं आये ?

सौदामिनी : सतारा के श्रीमंतों से क्या कहूँ ?

गंगा : उन लोगों को इस बाहरी कक्ष में आने को कह दो। हम लोग जा रहे हैं। मैं पूजा के बाद ही उनसे भेंट कर सकूँगी। श्रीमंत नाना को इस बात की सूचना होनी चाहिये।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा।

गंगा : ताई ! ये सतारा के श्रीमंत कौन होंगे ? किस लिये भेंट करना चाहते हैं ?

पार्वती : सतारा में तो तुम्हारे कुछ सम्बन्धी भी हैं। शायद उन्हीं में से कोई हों।

गंगा : इनके दर्शनों से आँसू बहने लगते हैं पर हृदय को एक शान्ति मिलती है। जब मैं एकटक उनके चित्र की ओर देखती हूँ तो उनके ओंठ हिलते हुए ज्ञात होते हैं। वे होने वाले शिशु की बात मुस्कुरा कर कहने लगते हैं।

पार्वती : भगवान् करें, शीघ्र ही तुम माता बनो! तुम्हारा शिशु फूलों की मुस्कान लेकर आवे।

गंगा : बहुत मत कहो, ताई! कभी-कभी मुझे अपने आप से भय लगने लगता है। ऐसा दुर्भाग्य लेकर आयी हूँ कि अपने पति को तो खो ही चुकी हूँ, कहीं अपने शिशु···(गला भर आता है।)

पार्वती : (बीच में ही) बड़ा प्रतापशाली होगा वह, गंगा! तुम्हारे दुःख की कालिमा को दूर कर चन्द्र की भाँति उदित होगा!

गंगा : इसीलिए मैं अपनी कल्पना में डूबकर न जाने कैसे-कैसे चित्र बनाती रहती हूँ। यही चित्र कभी रुलाते हैं, कभी हँसाते हैं···(एक क्षण रुककर) तुमसे एक प्रार्थना करूँ, ताई?

पार्वती : मुझसे? कौन सी प्रार्थना?

गंगा : मानोगी? मान लोगी? नहीं, मुझसे कहते नहीं बनेगा!

पार्वती : कहो न। मानूंगी तुम्हारी बात।

गंगा : मैं यही चाहती हूँ कि···कि···(रुक जाती है।)

पार्वती : हाँ, हाँ, कहो न।

गंगा : कहते नहीं बनता···मैं यही चाहती हूँ कि आप भगवा···न गजानन से प्रार्थना करें···भगवान गजानन से प्रार्थना करें कि···वह खिलने वाला फूल···पुत्र-पुत्र में खिले···पुत्र अर्थात् पुत्र हो! (अपने को सम्हाल कर) मैंने अनुचित बात तो नहीं कही? ताई, मैं बहुत मूर्ख हूँ!

पार्वती : नहीं, गंगा! इसमें मूर्खता की बात क्या! यह तो माता की ममता है! मैं भगवान गजानन से अवश्य प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा

के ऊपर। यह काष्ठ-पेटिका। मेरा असली दिमाग तो इसी काष्ठ-पेटिका मे है।

**मामा :** मेरा ख्याल तो है कि तुम्हारे दो दिमागों मे से एक भी काम न आयेगा। तुम्हारा यह दांव भी खाली गया, महादेव!

**महादेव :** दांव खाली नही जा सकता, मामा! गंगा बाई हमें मिली नही कि हमने उन्हें यह पेटिका पकडाई और बस, काम तमाम!

**मामा :** काम तमाम! इतने जहरीले कपड़े हैं ये?

**महादेव :** राघोबा काका ने दिये हैं। आनन्दी काकी ने इन कपडो को जहर में डुबाया है। आनन्दी काकी कच्चा खेल कभी नही खेलती, मामा!

**मामा :** धीरे बोलो, महादेव! धीरे बोलो। यह नाना फड़नवीस का मकान है। यहाँ दीवारों के भी कान होंगे।

**महादेव :** अरे, इस बाहरी कक्ष में कोई नही आता। बाहर सतरी पहरा दे रहा है। यहां कौन आवेगा?

[ सौदामिनी का प्रवेश ]

**सौदामिनी :** मैं आ सकती हूँ? श्रीमती गंगा बाई ने कहलाया है कि यदि उन्हें पूजन मे कुछ देर लग जाय तो आप क्षमा कीजियेगा। आप यहीं विश्राम करें। वे पूजन के बाद ही आपके कपड़ों की भेंट स्वीकार करेंगी।

**महादेव :** (हर्षातिरेक में गद्‌गद कंठ से) धन्यवाद! धन्यवाद! सौदामिनी जी! हम लोग किस योग्य हैं कि श्रीमती गगा बाई जी को कुछ भेंट कर सकें? लेकिन सुना है कि वे जल्दी ही माता बनने वाली हैं, तो सतारा से उनके कुछ सम्बन्धियो ने उन्हें अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्र भिजवाये हैं। वे पूजन के पहले उन्हें धारण करती तो अच्छा होता, सौदामिनी जी!

**सौदामिनी :** इस समय तो वे पूजन-गृह में हैं—आ नही सकेंगी।

**मामा :** कोई बात नही, कोई बात नही। इन वस्त्रो को धारण कर पूजन तो दुबारा भी हो सकता है।

मामा : देखो ! कोई आ रहा है। अपनी कटार सम्हालो।

महादेव : (जल्दी में पैर के नीचे डाल कर) यह रही पैर के नीचे।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : जय हो !

महादेव : क्या बात है ?

सैनिक : श्रीमती गंगा बाई की सेवा में निवेदन है।

महादेव : गंगा बाई यहाँ नहीं हैं। क्या निवेदन है ?

सैनिक : पेशवाई के लिए विद्रोह करने वाले रघुनाथराव जी राघोबा बन्दी हो गये हैं। नाना जी उन्हें साथ ला रहे हैं।

महादेव : क्या राघोबा काका बन्दी हो गये ?

मामा : बन्दी हो गए ?

सैनिक : श्रीमती गंगा बाई को यह सूचना देने की मुझे आज्ञा है।

महादेव : अच्छा, मैं···मैं···श्रीमती गंगाबाई···को यह सूचना··· यह सूचना दे दूंगा।

सैनिक : जय हो ! (प्रस्थान)

महादेव : (क्रन्दन स्वर में) मामा !

मामा : महादेव !

महादेव : यह क्या हो गया ?

मामा : यह दाँव भी खाली गया !

महादेव : जिन राघोबा काका के बल पर हम लोग राजनीति खेलने आये थे, वे ही बंदी हो गये ! अब क्या होगा ?

मामा : घबराओ मत, महादेव ! आनन्दी काकी तो बन्दी नहीं हुई ? वे राघोबा काका को छुड़ाने की चाल अँगरेज़ी टोपी वालों से मिलकर ज़रूर निकाल लेंगी।

महादेव : पर नाना तो अगरेज़ी टोपी वालों की सब चालें जानते हैं।

मामा : आनन्दी काकी की चाल तो नहीं जानते।

**महादेव :** अरे, जो ब्रह्मा भी नहीं जानते, वह नाना जानता है। हाय ! अब क्या होगा !

[बाहर कोलाहल होता है ।]

**मामा :** देखो खिड़की से । यह कैसा कोलाहल है ?

**महादेव :** देखता हूँ। (**खिड़की के समीप जाकर**) आगे बहुत से सैनिक चल रहे हैं। बीच में राघोवा काका मुंह लटकाये जा रहे हैं। लोहे की साँकलों से उनके हाथ बँधे हैं।

**मामा :** लोहे की साँकलों से ।

**महादेव :** हाँ, लोहे की साँकलें चलने से शब्द कर रही हैं। पीछे भी बहुत से सैनिक हैं। उनके पीछे घोड़े पर नाना फड़नवीस हैं। लोग उनका जय-जयकार करते हुए चलते हैं।

**मामा :** नाना फड़नवीस ने सतारा और पुरन्दर के लोगों का संगठन कर लिया है। उन्हीं की सहायता से शायद राघोवा काका को पकड़ा होगा। सखाराम बापू, त्रिम्बक राव और हरिपंत फड़के की गुप्त सभा इसीलिए हुई थी ।

मामा : नाटक ही सही । लेकिन अब सोचो कि नाना फड़नवीस के आने पर हमें क्या करना चाहिये ।

महादेव : तुम मत घबराना, मैं भी नहीं घबराऊँगा । जिससे उन्हें सन्देह न हो । खूब हँस-हँसकर बातें करेंगे, मामा !

मामा : हमें तो बस, राघोबा काका के लिए पेशवाई चाहिए । चाहे अभी मिले, चाहे बाद में ।

महादेव : वह तो होगा ही । (बाहर का कोलाहल भिन्न-भिन्न स्वरों में पास आता सुनाई पड़ता है—"कहो काका राघोबा, पेशवाई चाहते थे ?" "जल्दी-जल्दी चलो काका ।" "अभी बन्दीखाना दूर है" "नाना फड़नवीस की जय" "अरे भाई, कभी-कभी काका की भी जय बोल दो" "नाना फड़नवीस की जय ।")

मामा : नाना फड़नवीस की जय पास ही सुन पड़ती है । वे आने वाले ही हैं ।

महादेव : हम लोग अंतरंग कक्ष मे चले चलें । हम लोग श्रीमंतों की तरह अपने आने की सूचना देंगे । यहाँ बैठे रहेंगे तो हमारी उतनी इज्जत नहीं होगी ।

मामा : तुमने अच्छा सोचा । अच्छा, चलो हम लोग जल्दी ही चलें ।

[ दोनों का भीतरी द्वार से प्रस्थान ]

[एक क्षण बाद नाना फड़नवीस बाहरी द्वार से आते हैं । वे दुबले-पतले शरीर के हैं । पर गंभीर—अपने शब्दों को तौल कर बोलते हैं । उनकी चाल ऐसी है जैसे एक सिंह अपनी गिरि-गुहा में लौटता है ।]

नाना : (पेशवा नारायणराव के चित्र को देखकर) कैलासवासी पेशवा नारायणराव ! नाना फड़नवीस तुम्हें प्रणाम करता है । तुम्हारी हत्या की गयी ! आज उस हत्या का प्रतिशोध महाराष्ट्र की जनता ने लिया । कैलास में तुम सुखी हो !

(पुकार कर) सौदामिनी !

(नेपथ्य से) श्रीमंत ।

**नाना :** इस समय तो श्रीमती गंगा बाई पूजन-गृह में होंगी ?

**सौदामिनी :** हाँ, श्रीमंत !

**नाना :** उनकी पूजा कब तक समाप्त होगी ?

**सौदामिनी :** आरती हो चुकी है।

**नाना :** आरती के बाद यहाँ आने का कष्ट करें ।

**सौदामिनी :** जैसी आज्ञा, श्रीमंत ! (जाना चाहती है ।)

**नाना :** सुनो ।

**सौदामिनी :** (लौटकर ) आज्ञा, श्रीमंत !

**नाना :** जब उनके आने की आवश्यकता होगी, मैं सूचित करूँगा । जाओ ।

**सौदामिनी :** जैसी आज्ञा, श्रीमंत !

**नाना :** थक गया हूँ । विश्राम करूँगा ।

[ कुर्सी पर लेटते हुए उनकी दृष्टि फर्श पर पड़ी हुई कटार पर पड़ती है । ]

**नाना :** (उठाते हुए) यह कटार ! ···किसकी कटार है··· ? यहाँ कैसे ··? (उठा कर देखते हैं।) इस कटार पर किसी का नाम भी खोदा गया है ।...(पढ़ते हुए) पेशवा···रघुनाथराव··· राघोवा···राघोवा ? यह राघोवा की कटार है ?···यहाँ कैसे ···? राघोवा तो अभी नियंत्रण में लाये गये हैं । फिर उनकी कटार यहाँ कैसे हो सकती है ? कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है ! (पुकार कर) सौदामिनी !

**सौदामिनी :** (नेपथ्य से) श्रीमंत ।

**नाना :** राघोवा की कटार···

**सौदामिनी :** आज्ञा श्रीमंत···

**नाना :** इस कटार को तुम पहिचानती हो ?

**सौदामिनी :** (देखकर) नहीं, श्रीमंत !

नाना : यह इस कक्ष में कैसे आयी ?

सौदामिनी : मैं नहीं जानती, श्रीमंत !

नाना : यह कटार काका राघोबा की है।

सौदामिनी : काका राघोबा की ? रहस्यपूर्ण है।

नाना : यह तुम्हारी सम्पत्ति तो नहीं है ?

सौदामिनी : नहीं, श्रीमंत ? आपके द्वारा दिए गये शस्त्र पर्याप्त हैं। उनके रहते अन्य शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

नाना : तुम काँप रही हो ? यह किसी षड्यंत्र की भूमिका ज्ञात होती है। मेरे आने के पूर्व इस कक्ष में कोई था ?

सौदामिनी : हाँ, श्रीमन्त ! श्रीमती गंगा बाई के दो सम्बन्धी हैं। वे श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने के लिए सतारा से आये हैं। कुछ भेंट भी लाये हैं। वही इस कक्ष में बैठे थे।

नाना : श्रीमती गंगा बाई से उनकी भेंट हुई ?

सौदामिनी : नहीं, श्रीमंत ! श्रीमती पूजन के लिए चली गयी थीं।

नाना : इस समय वे सम्बन्धी कहाँ हैं ?

सौदामिनी : अन्तरंग कक्ष में श्रीमती की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

नाना : उन्हें इस स्थान पर भेजो।

सौदामिनी : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

नाना : (सोचते हुए) श्रीमती गंगा बाई के सम्बन्धी···! सतारा···से··· क्या भेंट लाये हैं ? भेंट के लिए···मेरी अनुपस्थिति···का ···समय ही···क्यों चुना ···गया···?

सौदामिनी : सतारा के श्रीमंत उपस्थित हैं।

नाना : आने दो।

[महादेव और उसके मामा का प्रवेश]

महादेव : श्रीमंत नाना की जय ! सतारा से महादेव प्रणाम करता है।

मामा : महादेव का मामा भी प्रणाम करता है।

नाना : भूमि से अपना सिर उठाओ, महादेव ! जिससे मैं तुम्हारा मुख देख सकूं। और महादेव के मामा ! तुम्हारा नाम क्या है ?

मामा : नाम···मेरा नाम···सब लोग मुझे मामा ही कहते हैं।

नाना : मामा···किसलिए आप लोगों ने कष्ट किया ?

महादेव : श्रीमंत का यश चारों ओर फैला हुआ है। जैसे···जैसे··· खेत में हरियाली फैली होती है···नहीं, ठीक नहीं कह सका··· जैसे तलवार की धार फैली रहती है···नहीं श्रीमंत !···मैं ठीक तरह से नहीं कह सकता। (मामा से) मामा ! तुम बोलो।

मामा श्रीमंत ! आपके यश को सुनकर हम लोग यहां आये जैसे सूरज को देखकर किरणें आ जाती हैं।

नाना : जैसे सूरज को देख कर किरणें···आप लोग सतारा से आए हैं।

महादेव : हाँ, श्रीमंत ! सतारा से। वहां हम सबने आपके दर्शन किये थे। आपके दर्शन ! आप कितने सुन्दर हैं ! (मामा से) मामा ! तुम बोलो।

मामा : श्रीमंत ! सतारा से हम लोग आपके लिए वस्त्र लाये हैं।

नाना : मेरे लिए ? वस्त्र ? क्यों ? मैंने सुना कि आप लोग श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने आये हैं।

मामा : हाँ, श्रीमंत ! श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने आये थे, बिना भेंट किए ही चले जावेंगे। देर हो रही है।

नाना : देर ? भेंट के लिए आये और बिना भेंट के ही चले जायेंगे ?

महादेव . नहीं, श्रीमंत ! मामा आपके सामने ठीक बातें कह नहीं पाते। हम लोग श्रीमती गंगा बाई के लिए वस्त्र लाये थे।

नाना : वस्त्र, कैसे वस्त्र ?

महादेव : सतारा में उनके बहुत से सम्बन्धी हैं, उन्होंने सुना कि गंगा बाई शीघ्र ही माता होने वाली हैं, इस अवसर पर प्राचीन रीति के अनुसार उनके सम्बन्धियों ने उनके लिए रेशमी वस्त्र भेजे हैं।

नाना : उनके सम्बन्धियों के प्रति हम लोग कृतज्ञ हैं। कहाँ हैं वे वस्त्र ?

महादेव : चन्दन की इस पेटिका मे हैं।

नाना : मैं इन वस्त्रों को देखना चाहूँगा ।

महादेव : वे इस पेटिका में ही हैं ।

नाना : राज्य-शिष्टाचार के अनुसार तो वस्त्र चाँदी के थालों में सजाकर प्रस्तुत किए जाते हैं ।

महादेव : हमें चाँदी के थालो में सजाने की आज्ञा नही है।

नाना : किसकी आज्ञा नही है ? (पुकार कर) सौदामिनी !

सौदामिनी : (नेपथ्य से) श्रीमंत !

महादेव : नही, श्रीमत ! सौदामिनी देवी को क्यों कष्ट देते हैं ? इस चन्दन की पेटी मे ही वस्त्र रहेंगे ।

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : श्रीमंत !

नाना : चाँदी का एक थाल शीघ्र लाया जाय ।

सौदामिनी : जो आज्ञा । (प्रस्थान)

महादेव : तब तो हम बिना वस्त्र दिए ही चले जावेंगे ।

नाना : आपके वाक्य संदेह उत्पन्न करते हैं । आप हमारे अतिथि हैं । हमारे यहाँ सम्मान सहित विश्राम कीजिये । दो-एक दिन हमारे यहाँ रहकर भेंट लेकर जाइये ।

मामा : श्रीमंत ! हमे शीघ्र ही जाने की आज्ञा दीजिये ।

नाना : ऐसा संभव नही हो सकेगा । आप हमारा आतिथ्य ग्रहण किये बिना यहाँ से नही जा सकेंगे ।

[सौदामिनी का चाँदी का थाल लिए हुए प्रवेश]

सौदामिनी : यह चाँदी का थाल प्रस्तुत है ।

नाना : इस चाँदी के थाल मे ये वस्त्र सजाइये ।

महादेव : ये राजसी वस्त्र है, श्रीमंत ! हम लोग इनका स्पर्श नही कर सकते ।

नाना : स्पर्श नहीं कर सकते ? अच्छी बात है । इन्हें इस पेटी में ही रहने दीजिये । एक बात और जानना चाहता हूँ । इन वस्त्रों के साथ कोई कटार भी भेजी गयी है ?

मामा : कटार ? नहीं, श्रीमंत ! कोई कटार नहीं भेजी गयी ।

महादेव : (धीरे से) मेरी कटार कहाँ है ?

नाना : यह है । यह कटार इसी कक्ष में आप लोग छोड़ गये थे ।

महादेव : जी हाँ, यह मेरी कटार है । मैं इसे देख रहा था । उसकी यहाँ आवश्यकता नहीं थी, इसलिए मैंने उसे पैर के नीचे ही दबा दिया था । जल्दी में उठाना भूल गया ।

नाना : काका राघोबा आप पर बहुत प्रसन्न हैं ।

महादेव : नहीं-नहीं, श्रीमंत ! हम लोग तो आपके पक्ष के हैं, काका राघोबा से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है ।

नाना : आपका कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी वे अपनी कटार आपको रखने के लिए देते हैं ।

महादेव : नहीं, यह तो मेरी अपनी कटार है ।

नाना : इस कटार पर लिखा हुआ है—रघुनाथराव राघोबा ।

महादेव : हम लोग पढ़ना नहीं जानते, श्रीमंत !

नाना : इसीलिए आप इसे अपनी कटार कहते हैं । यह कटार काका राघोबा की है । (ज़ोर से) बोलिए, यह कटार काका राघोबा की है ।

महादेव : (घबरा कर) हाँ, श्रीमंत ।

नाना : यह उन्होंने आपको किस लिए दी ?

मामा : हमारे गाँव में गन्ने की खेती बहुत होती है तो· · ·तो· · ·ग· · ·ग गन्ना छील कर खाने के लिए, श्रीमंत ! हमें कटार दी गयी

महादेव : (मामा से) मामा ! तुम चुप रहो (नाना से) श्रीमंत, म मूर्ख है । उसे उत्तर देना नहीं आता । श्रीमंत ! काका राघ एक बार सतारा आये थे । मैं उस समय बहुत दुःखी था । अ

हत्या करना चाहता था। उन्होंने भात्म-हत्या करने के लिए मुझे यह कटार दी थी।

नाना : फिर भापने भात्म-हत्या नहीं की।

महादेव : जी''नैंने भात्म-हत्या नहीं की।

नाना : भाप लोग काका राघोवा के षड्यंत्र में हैं?

महादेव : नहीं, श्रीमंत ! हम लोग किसी षड्यंत्र में नहीं।

नाना : (पुकार कर) सैनिक !

मामा : मैं तो बिलकुल ही निरपराध हूँ, श्रीमंत ! मेरे पास कोई कटार नहीं है।

नाना : काका राघोवा के सामने ही इसका निर्णय होगा।

[ सैनिक का प्रवेश ]

सैनिक : श्रीमंत की जय !

नाना : इन दोनों "यार" भाइयों को नियंत्रण में ले लो। भौर काका राघोवा को यहाँ लाभो।

सैनिक : जैसी भाज्ञा।

महादेव : मामा ! मैं कहता था कि हम लोग गये।

नाना : भच्छा होता कि जब राघोवा काका ने तुम्हें कटार दी थी, तभी भात्म-हत्या कर लेते।

महादेव : (करुण स्वर में) भात्म-हत्या तो हो ही रही है। मामा ! (नाना से) श्रीमंत, यह कपड़ों की पेटी भपने नियंत्रण में ले जाऊँ?

नाना : नहीं, यह यहीं रहेगी। सैनिक ! इन्हें ले जाभो। इन्हें बाहर ही रखना। भभी इनकी भावश्यकता होगी।

सैनिक : जो भाज्ञा। (दोनों से) चलिए, यार भाई !

मामा : (जाते-जाते) श्रीमत नाना की जय बोलो ! महादेव !

महादेव : मुझसे बोला नहीं जाता। मेरा गला ही बैठ गया है, मामा !

[ सैनिक के साथ दोनों का प्रस्थान। पीछे से सौदामिनी का भी प्रस्थान ]

नाना : सतारा से कपड़ों की भेंट—चन्दन की पेटी में और वे शाल मैं सजाये नहीं जा सकते। छुए नहीं जा सकते ! : (चित्र की ओर देखकर) पेशवा नारायणराव ! यह देखा ? चित्र में से देख सकते हो राघोबा का यह षड्यंत्र ? तुम्हारी हत्या के बाद श्रीमती गंगा बाई की हत्या का षड्यंत्र ! उनके लिए विष में बुझे हुए वस्त्रों की भेंट ! धारण करते ही उनकी मृत्यु हो जाय ! अन्यथा काका राघोबा की कटार का उपयोग। ब्रह्मघाती काका राघोबा ! तुम्हें नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा। अच्छा ही हुआ कि सम्बात भागने के पहले ही तुम बन्दी कर लिए गये ! नहीं तो कम्पनी के वकील मास्टिन और गोविन्दराव गायकवाड़ से संधि कर तुम अपने को पूरा पेशवा समझ लेते। पेशवा···रघुनाथ-राव ! हत्यारा ! देशद्रोही···!

सैनिक : नाना की जय ! काका रघुनाथराव द्वार पर हैं।

नाना : उन्हें भीतर लाओ। हरिपंत फड़के साथ हैं ?

सैनिक : हाँ, श्रीमंत।

नाना : दोनों ही भीतर आयें।

सैनिक : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

नाना : राजसत्ता का मोह ! पेशवा बनने का स्वप्न ! यह सब क्या इतना भयानक है कि काका अपने भतीजे की हत्या करे ? ···विदेशी कम्पनी से संधि कर देश के प्रति विद्रोह किया जाय ! विद्रोह··· भयानक विद्रोह··· !

[ हरिपन्त फड़के के साथ राघोबा का प्रवेश। राघोबा बन्दी वेश में हैं। ]

हरिपन्त : श्रीमंत नाना की जय !

नाना : स्वागत, हरिपंत ! काका राघोबा को कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

हरिपन्त : नाना ! श्रीमत भोसले से युद्ध में पराजित होकर जब राघोबा भागकर जंगलों में भटक रहे थे, तब मैंने उन्हें शीतल जल देकर उनकी प्यास बुझाई थी।

नाना : जिस व्यक्ति की प्यास रक्त से नहीं बुझी, उसकी प्यास शीतल जल से कैसे बुझ सकती है, हरिपन्त !

राघोबा : नाना ! मैं पेशवा का काका हूँ। तुम्हारे व्यंग्य के शब्द मेरे लिए अपमान-जनक हैं। पेशवा का काका सम्मान में पेशवा से भी महान् है !

नाना : पेशवा का काका !···सचमुच अगर पेशवा का काका अपने सम्मान की मर्यादा समझता ! यदि पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद पेशवा का काका स्वयं पेशवा बनना चाहता था तो उसका सम्मान इसी में था कि वह महाराष्ट्र की शक्ति के बल पर ही पेशवा बनता ! राज्य के प्रमुख सरदारों की सहायता और जनता की सहानुभूति से ही पेशवा बनता ! पेशवा बनने का यह मार्ग नहीं था कि विदेशी कम्पनी के वकील मास्टिन के चरणों पर पेशवा का काका अपना मस्तक झुकाता ! आज पेशवा के काका से समस्त महाराष्ट्र और समस्त देश का अपमान हुआ है।

राघोबा : यह स्मरण रक्खो, नाना ! कि तुम केवल फड़नवीस हो, राज्य के आय-व्यय के लेखक हो। राज्यवंश के अधिकारी से इस तरह बात नहीं कर सकते। नारायणराव के बाद में ही पेशवा-पद का अधिकारी हूँ।

हरिपन्त : काका ! अधिकारी तो आप उसी समय से अपने को मानने लग थे जब से मेरे स्वामी माधवराव पेशवा की मृत्यु हुई थी।

राघोबा : चुप रहो, हरिपन्त ! माधवराव का साधारण-सा कारकुन, यदि अच्छा सैनिक होकर छोटी-सी लड़ाई जीत ले, तो वह मुझसे बात

करने का अधिकारी नहीं हो सकता। तुम्हें मेरी आलोचना करने का क्या अधिकार है ?

नाना : पूरा अधिकार है, काका ! प्रजा का सामान्य व्यक्ति भी राजा की आलोचना करने का अधिकार रखता है। हिन्दू-पद-पादशाही जनता की मंगल-कामना से ही स्थिर है।

हरिपन्त : कैलासवासी माधवराव ने भी काका से यही कहा था।

नाना : अट्ठाइस वर्ष की छोटी-सी आयु में ही माधवराव की मृत्यु हुई !

हरिपन्त : मृत्यु नहीं हुई, नाना ! उनकी भी हत्या की गई !

राघोबा : हरिपन्त ! नीच ! नारकी ! यदि मैं इस समय स्वतंत्र होता तो तेरी जीभ काटकर फेंक देता। व्यर्थ का कलंक लगाने वाला हरिपन्त आज संसार में जीवित नहीं रहता !

नाना : तुम्हारे दुर्भाग्य से वह जीवित है, काका ! वास्तव में माधवराव की हत्या की गई है। सत्य का उद्घाटन भले ही सुनने में अच्छा न लगे, पर इतिहास में उसे अंकित रहना चाहिए।

हरिपन्त : काका ! आप चाहे मुझ पर कितना ही क्रोध करें पर शांत हृदय से आप सोचिए कि हिन्दू-पद-पादशाही पर शस्त्र चलाने के लिए जब आप तैयार हुए तो क्या आप समस्त राष्ट्र के शत्रु नहीं हुए ? क्या आपने पेशवा माधवराव के विरोध में सरदारों को अपनी ओर नहीं फोड़ा ? मेरे सामने ही पेशवा माधवराव ने कहा था—"काका ! यदि हम-आप ही लड़ेंगे तो शत्रुओं की मस्ती कौन दूर करेगा ? पानीपत के संहार का बदला किस प्रकार लिया जायगा ? हमारे कैलासवासी पूर्वज हमें क्या कहेंगे ? राज्य आपका है, मैं आपका हूँ। आप ही राज्य सँभालें और शत्रुओं का विनाश करें।" इतने पर भी आपने पेशवा माधवराव का साथ नहीं दिया और विदेशी वकील मास्टिन की सहायता से उनका सर्वनाश किया ?

राघोबा : यह बात झूठ है । नाना फड़नवीस ! तुम राज्य के अधिकारी हो । मेरा अपमान करने के कारण हरिपन्त फड़के को दंड दो ।

नाना : मेरे न्याय पर आपने विश्वास किया, काका ! इसके लिए आपको साधुवाद ! इस पर विचार किया जायगा किन्तु हरिपन्त ! तुम जाओ ! काका इस समय क्रोध मे है । फिर बात करना ।

हरिपन्त : जैसी आज्ञा ! प्रणाम करता हूँ । (प्रस्थान)

नाना : हरिपन्त गये । अब आपको क्रोध नहीं आयेगा । अब आप शांत हृदय से सत्य स्वीकार करने का साहस दिखला सकेंगे । संभव है, पेशवा माधवराव की हत्या न भी की गई हो किन्तु पेशवा नारायण की तो हत्या की गई, यह आप स्वीकार करेंगे ।

राघोबा : हाँ, हत्या हुई । किन्तु यह हत्या मैंने नही की । मैं यह हत्या करना भी नही चाहता था ।

नाना : किसने हत्या की ?

राघोबा : वधिकों ने ।

नाना : किसकी आज्ञा से ?

राघोबा : मैं नहीं जानाता । मैंने तो केवल पेशवा नारायणराव के लिए 'धरावा' यानी 'पकड़ लो' की आज्ञा दी थी, किसी ने 'ध' को 'मा' करके 'मारावा' अर्थात् "मार डालो" लिखकर मेरी आज्ञा में परिवर्तन कर दिया और नारायणराव की हत्या हुई !

नाना : काकी आनन्दी बाई को क्या कहूँ ! किन्तु जिस समय पेशवा नारायणराव को मारने के लिए वधिक झपटे उस समय वे दौड़कर आपसे लिपट गये और उन्होंने क्रन्दन स्वर मे कहा—"काका, मेरा राज्य ले लो पर मुझे जीवन-दान दो । यदि आप मुझे मरवाना ही चाहते हैं तो किसी वीर के लिए जो मृत्यु उचित है, उसी मृत्यु से मुझे मरने दो ।" किन्तु आपने नारायणराव पेशवा का वह क्रन्दन सुना ही नही ।

राघोबा : मैं लाचार था, नाना !

नाना : लाचार इसलिए थे कि आप स्वयं पेशवा होना चाहते थे। आपको पेशवा नारायणराव की नव-वधू के निरन्तर बहने वाले आँसुओं पर दया नहीं आई ! उसके जीवन-भर होने वाले चीत्कार और क्रन्दन से आपका हृदय द्रवित नहीं हुआ !

राघोबा : स्त्रियों के आँसुओं से राजनीति द्रवित नहीं होती, नाना ! और भी उज्ज्वल होती है। युद्ध-भूमि में हजारों वीर कट जाते हैं, उनकी स्त्रियों के आँसुओं से न राज्य बनते हैं, न बिगड़ते हैं।

नाना : काका ! आपकी राजनीति की परिभाषा पर मुझे दुःख है। युद्ध-भूमि में वीरों की मृत्यु अभिमान और गौरव की वस्तु है किन्तु क्रूरता से, छल से, वीर की हत्या करना राजा और उसके राज्य के लिए कलंक की बात है ! आपका यह कलंक मानव-जाति के इतिहास में काला धब्बा बनकर रहेगा !

राघोबा : नाना ! सावधान हो ! अपने वाक्यों को मर्यादा में रहने दो। कोई समय आयेगा जब मैं तुम्हारे स्थान पर होऊँगा और तुम बेड़ियों से जकड़े हुए मेरे सामने खड़े होगे।

नाना : ब्रह्म-हत्या नहीं की, मैंने गोत्रज-हत्या नहीं की, मैंने पुत्र-वध नहीं किया जो आपने किया है, काका ! मेरी राजनीति स्वार्थ के पैरों नहीं चलती, जनता के पैरों चलती है। यदि मैं पेशवा होना चाहता तो आपसे पहले पेशवा होता किन्तु पेशवाई उसे मिलनी चाहिए जो जनता की सेवा से पेशवाई का अधिकारी है। मैं पहले भी फड़नवीस था, आज भी हूँ और कल भी यही रहूँगा। काका ! अनुचित राज्य-लिप्सा के गले में सोने की जंजीर नहीं, लोहे की जंजीर होती है। अनुचित नीति-मत्ता राज-द्रोह है, राष्ट्र-द्रोह है।

राघोबा : (तीव्रता से) राष्ट्र-द्रोही तुम हो। तुमने मेरा साथ नहीं दिया। पेशवाओं का रक्त मेरे शरीर में अभी तक प्रवाहित है। पेशवा

नारायनराव की मृत्यु के बाद—वह मृत्यु भले ही हत्या से क्यों न हुई हो—उस वंश में मेरे सिवाय कौन पुरुष था जो पेशवाई का अधिकारी होता ? केवल मैं था—शेष स्त्रियाँ थीं किन्तु तुमने मेरा साथ—राज्य का साथ नहीं दिया और मृतक पेशवा नारायनराव की पत्नी गंगा बाई का पक्ष लेकर नई पेशवाई खड़ी कर ली। गंगा बाई राज्य की स्वामिनी, सखाराम बापू और तुम मंत्री, और राघोबा विद्रोही हैं, उसका राज्य पर कोई अधिकार नहीं है, ऐसी तुमने शहर-शहर में दुहाई फिरवा दी ? नागपुर के भोंसले को अपने पक्ष में कर लिया, मुझे बंदी करने के लिए भोंसले की सेनाएँ चल पड़ीं। हरिपन्त जैसे तुच्छ फड़कुन को सेनापति बनाकर मुझे अपमानित कराया ! राष्ट्र-द्रोही कौन है ? परिस्थितियों से पूछो—मैं हूँ या तुम हो ? नाना ! मेरी पेशवाई में तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध न होता, इसलिए अपने स्वार्थ के लिए तुमने गंगा बाई को स्वामिनी बनाया है ! स्वार्थी नाना ! राष्ट्रद्रोही तुम हो ! तुम !

नाना : काका ! राष्ट्रद्रोही मैं हूँ ? यदि आप किसी ईश्वर को मानते हैं तो उससे पूछिये। आप मनुष्य की हत्या कर सकते हैं, सत्य की हत्या नहीं कर सकते। स्वर्गवासी पेशवा नारायनराव की पत्नी श्रीमती गंगा बाई मातृत्व के पद पर हैं। उनका पुत्र ही पेशवा-पद का अधिकारी होगा। उस पुत्र के अधिकारों की रक्षा करने में ही मेरी राज्य-सेवा है। और आपकी राज्य-सेवा ? योग्य पेशवा की हत्या कर उसकी पेशवाई छीनना आपकी राज्य-सेवा है, मैं हत्यारे का साथ नहीं दे सका—इसमें मेरा स्वार्थ है ? नागपुर के भोंसले साथ नहीं दे सके भोंसले का क्या स्वार्थ है ? जो अपने पाप को पुण्य का रूप दे सकता है वह संसार में कौन-सा पाप नहीं कर सकता ? काका ! अपने

का नग्न रूप देखिये ! आप केवल पुरुष ही की हत्या नहीं कर सकते, स्त्री की भी हत्या कर सकते हैं।

राघोवा : स्त्री की हत्या ? मैंने किस स्त्री की हत्या का प्रयत्न किया है ?

नाना : गंगा बाई की। पेशवा नारायणराव की हत्या करने के बाद उनकी पत्नी गंगा बाई की हत्या के लिये प्रयत्न !

राघोवा : यह झूठ है ।

नाना : इस चन्दन की पेटी में जो वस्त्र रक्खे हुए हैं, वे झूठ नहीं बोलते। ये वस्त्र हाथ से नहीं छुए जा सकते। घोर हलाहल में बसे हुए हैं। ये वस्त्र श्रीमती गंगा बाई को धारण करने के लिए भेजे गए हैं। काका ! क्या मैं यह भी कहूँ कि इन्हें किसने भेजा है ?

राघोवा : किसने भेजा है ?

नाना : जिसकी यह कटार है । (कटार फेंकता है) इस पर जो नाम खोदा गया है, वह है—रघुनाथ राव राघोवा।

राघोवा : यह तुम कैसे कह सकते हो कि इन्हें मैंने ही भेजा है।

नाना : इसका भी प्रमाण दिया जा सकता है। (पुकार कर) सैनिक ! (राघोवा से) काका ! आपका देश-द्रोह अनेक जिह्वायें लेकर बोलता है।

सैनिक : श्रीमंत की जय हो ! आज्ञा !

नाना : अतिथि-कक्ष में बैठे हुए महादेव और उसके मामा को उपस्थित करो।

राघोवा : (सोचता हुआ) महादेव और उसका मामा ?

नाना: यही आदमी थे, काका ! जिन्हें आपने अपनी कटार देकर विष के बुझे हुए वस्त्र चंदन की पेटी में भेजे थे। चंदन की पेटी में विप से भरे हुए वस्त्र ! ठीक है, काका ! चन्दन के वृक्ष में विषधर ही लिपटे रहते हैं। आपने इस सत्य को प्रमाणित कर दिया।

राघोवा : (क्षोभ से धीरे) तो ये दोनों व्यक्ति पकड़े गये !

[सैनिक के साथ. महादेव और उसके मामा का प्रवेश ]

महादेव : श्रीमंत काका और नाना की जय ।

मामा : श्रीमंत नाना और काका की जय !

नाना : महादेव ! तुम जो विष से भरे हुए वस्त्र श्रीमती गंगा बाई के लिए लाये, वे किसने भेजे थे ।

महादेव : वे··· वे···सतारा ने भेजे थे ।

नाना : सतारा ने भेजे थे ? सतारा से किस व्यक्ति ने भेजे थे ?

महादेव : सतारा से गंगा बाई के सम्बन्धियों ने भेजे थे ।

नाना : उनका क्या नाम है ?

मामा : मैं बतलाऊँ, नाना ? जिस व्यक्ति ने भेजे थे, उसका नाम हम नहीं ले सकते ।

नाना : मैं यह निर्णय देता हूँ कि यदि भेजे जाने वाले का नाम इसी समय नहीं बतलाया गया तो दोनों व्यक्तियों को प्राण-दंड दिया जायगा ।

महादेव : प्राणदंड !

मामा : (अधिक डरे हुए शब्दों से) प्राणदंड ! (राघोबा से) काका ! अब आपही हमारी रक्षा कर सकते हैं !

नाना : जो व्यक्ति स्वयं बन्दी है, वह कैसे रक्षा कर सकता है ?

महादेव : तो हम लोगों को क्षमा कीजिए, श्रीमंत नाना फड़नवीस !

नाना : क्षमा किसी प्रकार नहीं मिल सकेगी । नाम प्रकट किया जाय नहीं तो तुम दोनों प्राण-दंड के भागी होगे ।

महादेव : (राघोबा से) काका ! एक हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ वापस ले लीजिये और हम दोनों के प्राण बचा लीजिये ।

नाना : सुना, काका !—एक हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ वापस ले लीजिये । एक हज़ार स्वर्ण मुद्राओं से आप गंगा बाई के प्राण लेना चाहते थे ? सोचा होगा कि श्रीमती गंगा बाई को मार डालने के बाद नये पेशवा का प्रश्न ही नहीं उठेगा और आप सरलता से पेशवा हो सकेंगे ।

राघोबा : मैं लज्जित हूँ, नाना फड़नवीस ।

नाना : (सैनिक) इन दोनों को ले जाओ । और बन्दी-गृह में डाल दो ।

मामा : अब हमें प्राणदंड तो नहीं मिलेगा ?

महादेव : अब तो आपको काका का नाम भी मालूम हो गया !

नाना : इसका निर्णय बाद में किया जायगा। (सैनिक से) ले जाओ इन्हें !

सैनिक : जो आज्ञा ! (दोनों के साथ सैनिक का प्रस्थान)

नाना : काका राघोबा को वन्दी-गृह में अकेले रहने से कष्ट होगा। ये दोनों व्यक्ति साथ रहेंगे तो आगे के षड्यंत्र बनाने में सरलता होगी।

राघोबा : नाना फड़नवीस ! अब मुझे अधिक अपमानित न करो।

नाना : मैं आपको अपमानित नहीं कर रहा, राघोबा काका ! आपके कार्य ही आपको अपमानित कर रहे हैं, किन्तु अब आपसे मेरी प्रार्थना है कि अपनी जननी जन्मभूमि के प्रति आप विश्वास-घाती न बनें। ये टोपीवाले अंग्रेज यहाँ व्यापार की सुविधा माँगने के लिए आए थे पर अब ये हमारे देश पर अधिकार करना चाहते हैं। ये चाहते हैं कि हम लोग आपस में हमेशा लड़ते रहें जिससे ये कभी आपके साथ, कभी हमारे साथ, संधि कर अपने राज्य की जड़ें जमाते जायें।

राघोबा : ऐसी बात नहीं है, नाना ! अंग्रजों का वकील मास्टिन तो बहुत ही सच्चा और ईमानदार है। वह हमारा मित्र भी है।

नाना : वह मित्र इसीलिए है कि आप उसके हाथ की कठपुतली बने रहें। जानते हैं, बंबई की कौंसिल ने मास्टिन को पत्र में क्या लिखा है ? यह लिखा है—'मराठों को घर ही घर में एक दूसरे से लड़ाकर या जिस तरह हो सके इस बात की कोशिश करो कि मराठे हैदर के साथ या निज़ाम के साथ मिलने न पावें।' मास्टिन इस बात के लिए कोशिश कर रहा है और उसे आप मित्र समझते हैं ?

राघोबा : क्या यह सच है ?

सैनिक : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

नाना : (पुकार कर) सौदामिनी !

[ सौदामिनी का प्रवेश ]

सौदामिनी : श्रीमंत की जय !

नाना : सौदामिनी ! श्रीमती गंगा बाई से कहो कि वे इस कक्ष में आने का कष्ट करें।

सौदामिनी : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

नाना : काका ! पानीपत के युद्ध में महाराष्ट्र का भयानक पराभव हुआ ! परस्पर की फूट से हमने अपना देश और धन तो खोया ही, न जाने कितने वीरों के रक्त से देश की शस्य-श्यामला भूमि लाल कर दी। विदेशी हमें खिलौनों की भाँति खेलाकर हम पर हँसते हैं और एक दूसरे के ऊपर उछाल कर तोड़ रहे हैं। सोचिए, समझिए, काका ! परस्पर की फूट भारत के लिए अभिशाप बनी है। इस अभिशाप को सदैव के लिए समाप्त कर दीजिए।

[ हरिपन्त का प्रवेश ]

हरिपन्त : श्रीमंत की जय !

नाना : हरिपन्त ! तुम आ गये ! काका राघोबा ने कहा है कि वे मेरी बातों पर विचार करेंगे। इन॰ बन्धन खोल दो। इन्हें विश्राम-गृह में ले जाकर इनके विश्राम की व्यवस्था करो जिससे इन्हें सोचने की सुविधा मिले।

हरिपन्त : काका यों तो भले आदमी हैं, किन्तु काकी आनन्दी बाई ······

राघोबा : (चीख कर) हरिपन्त ! अपनी जिह्वा पर नियत्रण रक्खो।

नाना : हरिपन्त ! काका की बात का बुरा मत मानना। नियंत्रण अवश्य रखना, राघोबा काका के बन्धन तो खुल जायेंगे किन्तु इनकी गति-विधि पर नियत्रण रखना।

हरिपन्त : जैसी आज्ञा।

राघोबा : यह तुम्हारा अंतिम निर्णय है ?

नाना : मेरा ही नहीं, समस्त महाराष्ट्र का यह निर्णय है। महाराष्ट्र का कोई भी सावधान व्यक्ति आपका साथ नहीं दे सकता। यदि कोई आपको स्वार्थ के जाल में फँसाकर मार सकता है तो वह कम्पनी का वकील मास्टिन है। मैं फिर एक वार कहना चाहता हूँ, काका ! कि मास्टिन से सावधान रहिए। हम सब मिलकर इन कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों को सारे देश से बाहर निकाल देंगे। भोंसले, निज़ाम और हैदरअली हमारे साथ हैं; हम सब मिलकर इन विदेशियों की चालाकी समझें। आप श्रीमती गंगा बाई के होने वाले पुत्र सवाई माधवराव के संरक्षक बनिये और अपने काका के नाम को सार्थक कीजिए।

राघोवा : सोचूँगा, नाना ! इन बातों पर विचार करूँगा।

नाना : भगवान गजानन आपको महाराष्ट्र का महापुरुष बनाये। श्रीमती गंगा बाई को आशीर्वाद देंगे ? वे भगवान गजानन की पूजा समाप्त कर चुकी हैं।

राघोबा : जब तुम मुझे हत्यारा कहते हो तो हत्या करने वाला आशीर्वाद कैसे दे सकता है ?

नाना : दे सकता है, यदि वह हत्या का प्रायश्चित्त करे। और यही राष्ट्र-सेवा प्रायश्चित्त है। किन्तु आपका कहना भी ठीक है। महाराष्ट्र की पवित्र देवी पर कोई अपवित्र छाया भी नहीं पड़नी चाहिये। काका ! आपने कहा है कि आप मेरी बातों पर विचार करेंगे। बंदीगृह में आपको विचार करने का पर्याप्त अवकाश मिलेगा। (पुकार कर) सैनिक ···!

[ सैनिक का प्रवेश ]

सैनिक : श्रीमंत की जय !

नाना : सैनिक ! हरिपन्त बाहर होंगे। उनसे कहो कि काका राघोबा विश्राम करना चाहते हैं।

नाना : श्रीमती ! आज बड़े-बड़े कांड घटित हुए। सतारा से वस्त्रों की भेंट लेकर दो भद्र पुरुष आये थे।

गंगा : हाँ, मैंने सुना, वे मेरी प्रतीक्षा भी कर रहे थे। मैं भगवान गजानन की पूजा के लिए चली गई थी। वे चले गए ?

नाना : चले गए, बन्दी-गृह में।

गंगा : बन्दी-गृह में ?

नाना : हाँ, बन्दी-गृह में ! आपके लिए वस्त्रों की भेंट लाए थे। काका राघोबा ने पूना में रहते हुए सतारा से यह भेंट भेजी थी विष में डुबाकर। जिससे उन वस्त्रों को धारण करते ही आप संसार से चली जावें और उनकी पेशवाई का रास्ता साफ़ हो जाय।

गंगा : नाना ! यह तो बहुत अच्छा होता। इन भीषण कष्टों से मैं मुक्ति पा जाती ! जिस रास्ते मेरे स्वामी गये हैं, उसी रास्ते मैं भी चली जाती ! (एक अश्रु)

: अरे, आपकी आँखों में आँसू ! आप तो वीर-पत्नी हैं और अब वीर-जननी भी होने वाली हैं। क्या आप चाहती हैं कि चन्द्र की कला डूब जाय जिससे अन्धकार में चोरों को चोरी करने का अवसर मिले !

: आप सब की रक्षा कर लेंगे, नाना ! आप बहुत बड़े नीतिज्ञ और दूरदर्शी हैं।

: आज राघोबा काका बन्दी होकर महाराष्ट्र के अधिकार में हैं। हमारे राज्य के भीतर पनपने वाले सभी षड्यंत्र नष्ट कर दिए हैं। आज महाराष्ट्र लक्ष्मी सुखी और प्रसन्न है। आप भी हो जाइए, श्रीमती गंगा बाई ! जब तक यह नाना फड़नवीस में जीवित है, तब तक महाराष्ट्र सुरक्षित रहेगा, पूना का वंश सुरक्षित रहेगा। (पुकार कर) सैनिक !

[ सैनिक का प्रवेश ]

: श्रीमंत !

नाना : और सुनो। चन्दन की इस पेटिका को जिसमें विष-भरे वस्त्र हैं, अग्नि-देव को समर्पण कर देना। इसके वस्त्रों को कोई व्यक्ति स्पर्श न करे। काका राघोबा के राजसूय की अग्नि को ही यह समर्पित हो।

सौदामिनी : जो आज्ञा।

नाना : (गहरी साँस लेकर) अच्छा! काका राघोबा! यह भट्ट-वंशी फड़नवीस काका रघुनाथ राव को प्रणाम करता है! भविष्य में ऐसे काम न कीजिए कि महाराष्ट्र आपको काका कहने में लज्जा का अनुभव करे।

राघोबा : नाना फड़नवीस! तुम भी मेरे और अपने भविष्य पर एक बार फिर सोचना!

नाना : सत्य का संशोधन नहीं होता, काका! जाइए।

सौदामिनी : चलिए, काका!

[दोनों का प्रस्थान]

नाना : महाराष्ट्र के सौभाग्य की चन्द्र-कला कब राहु के मुख से मुक्त होगी! यह भगवान गजानन जानें!

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : श्रीमंत की जय! श्रीमती गंगा बाई आ गई हैं।

नाना : आने के लिए उनसे निवेदन हो।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

नाना : (सोचते हुए) महाराष्ट्र के सौभाग्य की चन्द्रकला··· श्रीमती गंगा बाई। बड़े सुन्दर चित्र खींचती हैं?! महाराष्ट्र के स्वर्णिम भविष्य का भी कोई चित्र खींचें।

[गंगा बाई का प्रवेश]

नाना : फड़नवीस का श्रीमती को नमस्कार!

गंगा : नमस्कार, नाना! आज आपने मुझे बहुत देर के बाद स्मरण किया।

# परिशिष्ट

## नाना फड़नवीस की आत्म-कथा

मैं विचार करूँ कि प्रभु के मुख की क्या अनुहार है। वह सत्य का प्रतीक है चेतना से सम्पन्न और अपनी ही ज्योति से उद्भासित है। प्रभु जाग्रत, स्वप्न और तुरीयावस्था में वर्तमान है। समस्त चेतन-सृष्टि में उसका आवास है। उसका जागरण दिन के प्रकाश में है, उसकी निद्रा रात्रि की निस्तब्धता में है। जिसकी ये समस्त उपाधियाँ हैं, वही एक अद्वितीय है—परमात्मा है।

वही है जो अपनी असीम शक्ति में समस्त वस्तुओं में प्रकट है। एक ही समय में वह सर्वत्र वर्तमान है। बिना पद के वह चलता है, बिना नेत्रों के वह देखता है, बिना हाथों के वह स्पर्श करता है, बिना कानों के वह सुनता है—वह अनन्त शून्य में परिव्याप्त है।

यह पूछा जाय कि किस बात से हम निर्णय करें कि परब्रह्म समस्त शून्य में सर्वत्र है और वह एकमात्र और सम्पूर्ण सत्ता है तो मैं कहता हूँ कि हम विचारानुभूति के विश्वास तथा रागात्मक तत्त्व की प्रच्छन्न चेतना से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार कितनी ही बार यह घटित होता है कि जब मनुष्य एकत्र होते हैं, (चाहे वे एक दूसरे से कितनी ही दूरी पर स्थित क्यों न हों), वे अपने विचार केवल एक दृष्टि या एक भंगिमा से दूसरों तक पहुँचा देते हैं, जैसे कि एक दर्पण किसी रूप को प्रतिबिम्बित कर दे।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि यदि उन शरीरों में एक आत्मा सन्निविष्ट न होती, तो यह विचार-साम्य संभव न होता।

जीवात्मा परमात्मा के गुणों के अनुरूप ही है और प्रत्येक मनुष्य को उसकी महिमा का अंश प्राप्त है। किन्तु इस सत्य से विरहित और असावधान होकर मनुष्य परमात्मा की महानता का चिन्तन नहीं करता और विनाशशील जगत् के कारी तामों का अनुसरण करता है। मनुष्य का वस्तुतः

स्वभाव ही ऐसा है। यह माया है जिससे वह पूर्णतः अभिभूत है और वही उसे कार्य की प्रेरणा देती है। माया न तो सार रूप है, न सम्पूर्ण रूप से मिथ्या, जिस भाँति ईश्वर का न तो मुख देखा जा सकता है, न सही ढंग से उसका वर्णन हो सकता है। माया मनुष्य के कार्यों को तीन तरह से प्रभावित करती है—कभी वह उससे अच्छा कार्य कराती है, कभी वह उसे स्वार्थी बनाती है और कभी वह उसे दुर्गुणी बनाती है किन्तु उसकी प्रगतिशील प्रवृत्ति अहंकार उत्पन्न करने की है। परमात्मा ने आकाश का निर्माण किया, उसके उपरांत वायु, प्रकाश, जल और पृथ्वी का निर्माण किया गया। हम इन पांच तत्त्वों को "महाभूत" कहते हैं।

इनके बीच में आत्मा स्थिति है, बुद्धिसम्पन्न और महाभूतों से घिरा हुआ। आत्मा नित्य है। वह नश्वर शरीर से सम्बद्ध नहीं है जिसमें वह प्रतिष्ठित है किन्तु उससे भिन्न है। मनुष्य-शरीर भौतिक है, वह पांच तत्त्वों से बना है और इसलिए वह सांसारिक सुख और दुःख भोगने में समर्थ है। केवल ऐन्द्रिक प्रभावों की प्राप्ति ही उसे होती है। लज्जा में उसका आधान है, प्रसव-वेदना में उसकी उत्पत्ति और संतुष्टि है और उत्पन्न होने के पूर्व ही वह नष्ट हो सकता है। गर्भ में नौ महीने तक यंत्रणा सहन करता है, अंत में कष्ट से ही उत्पन्न होता है और ऐसे संसार में प्रवेश करता है जो वेदना और पीड़ा से परिपूर्ण है। लम्बे काल तक वह अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकता, अपने सुख-चैन के लिए नहीं कह सकता, किन्तु धीरे-धीरे पौष्टिक पदार्थ ग्रहण कर आकार में बढ़ता है। हड्डियां और मांस-पेशियां शक्ति प्राप्त करती हैं, रक्त-गति संचरित होती है और अन्त में शिशु-रूप मनुष्य का रूप धारण करता है।

इन उपकरणों से मैं बना हूं। अज्ञान की गहराइयों में उत्पन्न हुआ (शुक्रवार, २४ फरवरी १७४२, दस बजे रात्रि)। घोर अंधकार में ग्रस्त---किन्तु पूर्व जन्म के सुकृतों से मैं शिशुपन में ही देवता की पूजा की ओर उन्मुख हुआ। यह प्रवृत्ति बचपन में ही प्रकट हो गई जब मैं मिट्टी से मूर्त्तियां बनाया करता था जो सामान्य रूप से मन्दिरों में रखी जाती हैं। उनसे ही मैं खेलता और पूजा की विधियाँ सम्पन्न करता। इनसे संतुष्ट न होकर मैं बहुधा अपने परि-

वार की मूर्तियों को किसी गुप्त स्थान में ले जाता जहाँ मैं बिना किसी बाधा के धार्मिक चर्चा करता··········।

जी हो, मैंने गोदावरी के तट पर टोंक जाने का निश्चय किया और भक्ति की कठोर साधना एवं मंदिर के सेवा-कार्य से अपने मनोभावों पर विजय प्राप्त करने का संकल्प किया। मैं उसी समय तक वहाँ कुछ ही दिन रहा जब भाऊ साहब (पेशवा के चचेरे भाई) ने हिन्दुस्तान पर स-सैन्य आक्रमण किया। (२ अक्टूबर १७५९)। मैं अपनी माता और पत्नी को लेकर इस विचार से उनके साथ हो लिया कि मैं बनारस, प्रयाग (इलाहाबाद) और गया जैसे पवित्र तीर्थ-स्थानों की यात्रा कर लूँगा और पवित्र भागीरथी के जल से पवित्र हो जाऊँगा। इस समय मेरा शरीर ऐसे रोग से आक्रांत था जिससे मेरी शक्ति और मानव वृत्तियाँ घट गई थीं। उस समय मैंने अपने मन को अधिक स्थिर और भक्ति के अनुकूल पाया अपेक्षाकृत उस समय के जब मैं अपनी मस्त तन्दुरुस्ती में था। मेरा समस्त जीवन और आत्मा इस समय धर्म और माता के प्रति श्रद्धा में तल्लीन हो गया था जिनसे मुझे अपनी धार्मिक भावनाओं में बड़ा प्रोत्साहन मिलता था।

नर्मदा पार करने पर मैं बीमार पड़ गया। संग्रहणी से इस सीमा तक पीड़ित हुआ कि मैं उठ नहीं सकता था। महामान्य भाऊ साहब मेरे प्रति इतने सहिष्णु थे कि उन्होंने सेना को उस समय तक रुकने की आज्ञा दी जब तक मेरे स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। ग्रहण के अवसर पर हम लोग चम्बल पहुँचे और अन्त में यमुना के गौ-घाट पर आए। इसके बाद हम लोग मथुरा की ओर बढ़े, वहाँ मन्दिर में धर्म-विहित पूजा-अर्चना कर हम लोग वृन्दावन गए। यहाँ मैंने उस कुंड में स्नान किए जहाँ भगवान कृष्ण ने कालियामर्दन किया था। हमने उस कदम्ब वृक्ष के अवशेष को भी देखा जिसमें पवित्र-धारा में स्नान करती हुई गोपिकाओं के वस्त्र चुरा कर भगवान छिप कर बैठे थे। वृन्दावन में हम मदन-बिहारी, कुंज-बिहारी, वंशी-बिहारी, राधा-किशोर और गोविन्द जी आदि कृष्ण की विविध लीलाओं और रूपों में समर्पित मन्दिरों में गए। कुछ समय तक मैंने कुंज-बिहारी मन्दिर के सेवा-कार्य में भी योग दिया। मैं

उस राधा-वृक्ष (जहाँ कृष्ण ने अपनी प्रेयसी राधा के शृंगार में सहायता की थी) और वंशी-वृक्ष (जिसके नीचे लेटकर वे वंशी बजाया करते थे) के समीप गया। इसी भाँति में सेवा-वन और कुंज-वन भी गया जहाँ भगवान विश्राम करते थे। कुंज वन के वृक्ष आकार में बहुत छोटे हैं किन्तु डालियों और पत्तों में अत्यन्त सघन हैं जिससे नीचे निरन्तर छाया रहती है। कुंज में सभी प्रकार के वृक्ष हैं किन्तु अन्यत्र जिन वृक्षों में काँटे हैं, वे यहाँ कंटक-विहीन हैं। इन कुंजों में मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ और मैं इस कल्पना में डूब गया कि इस समय भी इन कुंजों में कोई दैवी शक्ति निवास करती है।

मैं रमण-रेती (यमुना के कछार में बालू के टीलों) में भी जाकर लोटा जो आज भी उसी भाँति वर्तमान है जैसे भगवान के समय में रहे होंगे।

एक दिन तीसरे पहर ज्ञान-गुदरी स्थान पर साधुओं के पास भी गया जिनसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और अँधेरा होने के पहले मैंने धीर-समीर तट के किनारे संध्या-वन्दन किया। धीर-समीर नाम इसलिए है कि यमुना-जल से संसिक्त होकर संध्या समय वहाँ मन्द और शीतल समीरण बहती है। यह संध्या-वन्दन मैं चार दिनों तक करता रहा और मैंने अनुभव किया कि मेरा अंग-प्रत्यंग और मेरी इंद्रियाँ जो मेरी भक्ति से संवलित थीं, इस उपासना से पवित्र हो गई हैं। जब वृन्दावन में रहा, तब जो कुछ भी मैंने देखा, उसके प्रति मेरे हृदय में बरबस ही श्रद्धा हो जाती थी और वे महात्मा जी कुंज-वन के विविध स्थानों में बैठते थे और केवल मात्र जल अथवा पत्ते और तृण खाकर जीते थे, मेरे हृदय में श्रद्धा और आनन्द की भावना स्फुरित करते थे। इनमें से एक महात्मा ने मुझे अपने पास बुलाकर मेरे कान में एक मंत्र फूंका और प्रतिदिन उसका जप करते हुए उस पर आचरण करने को कहा। वृन्दावन से मैं दिल्ली गया, जहाँ महामान्य (भाऊ) की आज्ञा से मैंने पृथ्वीपति के प्रति आदर और सम्मान व्यक्त किया जिन्होंने बड़ी शालीनता से मेरा स्वागत किया और मुझे राजसी वस्त्र भेंट किए। उसी दिन महामान्य के साथ बैठे हुए मुझे भूकम्प की सनसनाहट ज्ञात हुई। दिल्ली में निवास करते हुए मैंने

अनेक चित्र खरीदे । इस बात का ध्यान रखा कि मेरे संग्रह में अशिष्ट और अश्लील चित्र न हों ।

इसी समय यह सूचना प्राप्त हुई कि उत्तर में ७५,००० सिपाहियों की यवन सेना यमुना के पश्चिमी तट पर पहुँच गई है किन्तु नदी में भारी बाढ होने के कारण दोनों सेनाएँ (यवनों की और भाऊ की) अलग ही रहीं । महामान्य ने शत्रुओं द्वारा बाधा देने पर भी, आगे बढकर कुजपुर की ओर प्रस्थान किया और उस पर अधिकार कर लिया । मैं उस सेना-गुल्म के साथ था जिसने आक्रमण किया, और प्रभु ने मेरे जीवन की रक्षा की । मुसलमानों ने वेग से नदी पार की और हमारे महामान्य ने प्रतिरोध किया । मैं तो केवल बच्चा था । महामान्य जो अन्य समस्त अवसरों पर पर्याप्त विवेक से काम लेते थे, इस अवसर पर अपना सन्तुलन खो बैठे । मेरे मामा बलवन्तराव और नाना पुरन्दरे, जो महामान्य के सहज सलाहकार थे, उपेक्षा के पात्र हुए और भवानीशंकर और शाह नवाब खाँ उनके प्रिय परामर्श-दाता बने । परिणाम-स्वरूप उन्होंने अपनी युद्ध-शैली छोड़कर शत्रु की युद्ध-शैली अंगीकार की । हम सब लोग घेर लिए गए और हमारे युद्ध-शिविरों में प्रतिदिन शत्रु की गोलियों की बौछार पडती रहती । मेरी माँ और पत्नी भयभीत होकर चीत्कार करतीं किन्तु मैं उनसे ईश्वर पर विश्वास रखने की बात कह कर उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न करता । अन्ततः मेरे मामा ( बलवन्तराव कृष्ण मेहन्दले) मारे गए और यदि अन्धकार घनाभूत न होने लगता तो हम सब लोग उस रात मार डाले जाते । इस भाँति हम लोग दो महीने तक घिरे रहे और इस अवधि में हमारी सेना के बहुत से जानवर मर गए । उनकी सड़न की दुर्गन्ध भयानक थी । मेरी मामी ने मामा के मृतक शरीर के साथ सती होने का आग्रह किया । इस मरणान्तक घटना के पूर्व महामान्य ने निर्णय किया था कि परिवार की समस्त स्त्रियों को शत्रु के हाथों में पडने की अपेक्षा, मृत्यु के घाट उतार दिया जाय और मैंने भी यही निश्चय किया था । हम दोनों ने, आदमियों को नियत कर दिया था कि यदि हम लोगों की हार हो जाय तो वे यह भयानक कृत्य कर डालें । होते-होते युद्ध प्रारम्भ हुआ (१५ जनवरी १७६१) । यद्यपि महामान्य बुद्धिमान, वीर,

और अनुभवी थे तथापि आगे चलकर वे घमंडी और अहंकारी हो गए थे और यद्यपि युद्ध-कार्य की व्यवस्था अच्छी थी, तथापि उसका निरीक्षण न तो उन्होंने स्वयं किया और न दूसरों ने। प्रत्येक दिशा में भ्रान्तियाँ फैलती रहीं। मैं महामान्य के अत्यन्त निकट ही रहा, किन्तु प्रभु से रक्षा की प्रार्थना करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकता था। विश्वासराव (पेशवा के ज्येष्ठ और प्रिय पुत्र) बन्दूक की गोली से गिर गए और उसी समय महामान्य उनके हाथी के समीप पहुँचकर वहीं रुके रहे। अफ़गान सैनिक अपने घोड़ों से उतर गए और सब ओर से हमारे शिविर पर आक्रमण करने लगे। अब युद्ध में मार-काट मच गई। ऐसी परिस्थिति में बाएँ पक्ष के सेनानायक भाग खड़े हुए। दाहिने पक्ष में सिंधिया और होलकर तटस्थ खड़े रहे और अन्त में राज्य-ध्वज पीछे हटता दिखलाई दिया। महामान्य के चारों ओर अब लगभग दो सौ सैनिक रह गए थ। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए जैसे वे देख ही नहीं सकते थे कि यह सब क्या हो रहा है। बापूजी पन्त ने मुझे पीछे जाने को कहा। मैंने उत्तर दिया—"ऐसी विपत्ति में मैं महामान्य का साथ नहीं छोड़ सकता।" किन्तु शीघ्र ही प्रभु की प्रेरणा से मैंने उनकी सलाह मानी। मैंने अपने घोड़े की बाग मोड़ी। एक लाख सैनिकों में जिनमें अनेक यशस्वी सेनानायक थे—एक व्यक्ति भी इस क्षण महामान्य के साथ नहीं रहा, यद्यपि मैंने उन्हें शांति के क्षणों में बार-बार शपथ लेते हुए सुना था कि महामान्य के सिर का एक बाल भी बाँका होने से पहले प्रत्येक, एक नहीं हज़ार जीवन (यदि उनके पास होंगे) तो वे बलि दे देंगे। इस भाँति वे महामान्य के वैभव के सहायक निकले, और आपत्तिकाल में पलायक।

जब मैं सोचता हूँ कि महामान्य अपने अधिकारियों को कितने मधुर भाषणों से सन्तुष्ट करते थे, कितने सम्मान, उपहार और जागीरों से अभिषिक्त करते थे, और उनका स्नेह प्राप्त करने के लिए कितने प्रयत्न करते थे, तब यह कितने महान् आश्चर्य की बात है कि परीक्षा के क्षण में वे इस बुरी तरह से परित्यक्त हो जायँ कि कोई यह भी न जाने कि किसी प्रकार रणभूमि में गिरे, और उस व्यक्ति का क्या हुआ जो कल तक महान् श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ था।

चारो ओर भगदड़ मच गई और सूर्यास्त होते-होते मैं पानीपत पहुँचा। मैं एकाकी, अपरिचित, जिस मार्ग पर चलना था, उसका एक इंच भी नहीं जानता था। उसी समय भाग्य ने पथ-प्रदर्शक के रूप में रामाजी पन्त को भेज दिया जिन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं अपना घोड़ा छोड़ दूं और अपने कपड़े उतार डालूं। मैंने ऐसा ही किया और रात को ही हम लोग चल पड़े। मैं तीन मील ही आगे बढ़ा होऊँगा कि टोपी वालो के आधे दर्जन जत्थों ने मेरी पुछ-ताछ आरम्भ की और हमारे दल में से दस या बारह व्यक्तियों को या तो मार डाला या घायल कर दिया। मैं बच गया, यह केवल परमात्मा की कृपा का फल है। रामाजी पन्त और बापूजी पन्त दोनों ही मेरे समीप रहे और सूर्योदय के पहले हम लोग पश्चिम को ओर दस कोस तक पहुँच गए। यहाँ हम शत्रु के एक दल से फिर घिर गए जिसने मेरे दोनों मित्र रामाजी पत और बापूजी पंत को गंभीर रूप से घायल कर दिया। केवल मेरे सिवाय कोई भी व्यक्ति नही छोड़ा गया क्योंकि मैं लंबी उगी हुई घास मे युक्तिपूर्वक छिप गया था और प्रभु ने मेरी रक्षा की। इस भाँति अब मैं अकेले ही चलने को बाध्य हुआ। मैं आगे दो कोस तक भटकता रहा। उसी समय कुछ और शत्रु दिखलाई पड़े। मैं फिर लंबी घास में छिप गया। लेकिन उन्होंने मुझे देख लिया और मैं घसीट कर बाहर लाया गया। उसी समय उस दल के एक बूढ़े आदमी ने कहा—"यह अभी लौंडा है, इसे जाने दो।" और इस भाँति वे मुझे छोड देने के लिए अप्रेमिरित हुए। मैं युद्ध के पहले बीमार था और अनेक दिनों से अल्पाहार ही करता था लेकिन हाल की जिन विपत्तियों में मैं उलझा उन्होंने जैसे मुझे जगा दिया और दूसरे दिन मैं बिना कुछ खाए लगभग पन्द्रह कोस तक चला गया। अन्त मे बड़ी भूख लगने पर मैंने कुछ बेल-पत्र खाने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें निगल नही सका। मैं चलता गया जब कि अन्त मे सध्या होते-होते मैं एक गाँव की सीमा पर पहुँचा। एक बैरागी मेरे लिए कुछ आटा लाया और मैंने मोटी रोटी बनाकर खाई। इतना स्वादिष्ट ग्रास मैंने कभी नहीं खाया। वह स्वर्ग के अमृत की भाँति मीठा था। मैं वहाँ रात भर सोया और सुबह फिर अपनी सफ़र पर भगवान् की प्रार्थना और जप करते हुए

रवाना हुआ। दिन में ही मैं एक दूसरे गाँव पहुँचा और एक साहूकार ने मेरा बड़े प्रेम से स्वागत किया। यहाँ अश्वारोहण-शाला विभाग के कारकुन यशवन्तराव ने मुझे पहिचाना। यहाँ मैंने और यशवन्तराव ने साथ भोजन किया लेकिन यहाँ भी इस सूचना से हम सजग हुए कि शत्रु का घोड़ा इस शहर में घुस आया है। साहूकार ने हम लोगों के लिए एक गाड़ी किराये पर कर हमें जयनगर तक भेजने का प्रस्ताव किया। हम लोगों ने सहर्ष यह प्रस्ताव मान लिया और हम अपनी यात्रा पर रवाना हुए। किन्तु फिर मेरे मन में आया कि यदि शत्रु कहीं पड़ोस में होंगे तो यह गाड़ी निश्चय ही उनके घोड़ों को चौकन्ना बना देगी। इसलिए मैंने गाड़ी छोड़ देने और पैदल चलने का निश्चय किया। इस समय हमारे दल में तीन या चार ब्राह्मण थे और पाँच या छः मराठे और हम लोग सात दिन तक बिना छेड़-छाड़ के आगे बढ़ते चले गए। रास्ते भर माँगते और प्रत्येक समय के भोजन के लिए प्रभु की कृपा पर ही निर्भर रहते। अन्त में हम लोग रिवाड़ी पहुँचे। हम लोगों ने यहाँ जाना कि सेना का अधिकांश भाग इसी रास्ते से भागा था। इस स्थान पर कोई बालोराव थे जो मेरे सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने में अत्यन्त आतुर थे। यह मैंने नगर के अनेक व्यक्तियों से जाना, जिन्हें मैं पहिचानता था। मैं इस व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था और यह भी नहीं समझ पा रहा था कि मेरे सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने में उसका क्या अभिप्राय था। इसलिए मैं अपने को प्रकट करने के पक्ष में नहीं था लेकिन अन्त में मैंने उसे अपना परिचय दे दिया। वह तत्क्षण मुझे अपने घर ले गया और उसने मेरा और मेरे दल का बड़े स्नेह से सत्कार किया। इसके बाद उसने मुझे कुछ कपड़े दिए और जब उसे यह ज्ञात हुआ कि स्थानीय व्यापारी रानजी दास जोशी से मेरा क्या सम्बन्ध है, उसने अपने घर के भाग में निवास करने की प्रार्थना की। यहाँ सात दिनों तक बड़ी साव-धानी से मेरी आव-भगत की गई। अब मेरी इच्छा थी कि मैं दिग और भरत-पुर के लिए प्रस्थान करूँ किन्तु साथ में एक रक्षक होना अनिवार्य था। अन्ततः उस दिशा में एक बारात जा रही थी। मैं एक किराये की गाड़ी लेकर उसके साथ चल पड़ा। रास्ते में कृष्ण भट्ट वैद्य मुझे मिले जिन्होंने मुझे सूचना दी

कि बीराजी मवाडीकर ने मेरी स्त्री को बचा लिया था और उसकी सुरक्षा और चिन्ता करते हुए जिगनी गाँव मे नरूमल गोखले के घर में उसे ठहरा दिया है। वहाँ वस्त्र और आवश्यक वस्तुओं की सुविधा उसके लिए कर दी गई है। तदनुसार मैं जिगनी गया और अपनी स्त्री को पुन पाकर आनन्दित और उन्नमित हो उठा। उसके लिए मैंने एक दूसरी गाड़ी किराये पर ली और हम लोग दिग की ओर चले। यहाँ पुरुषोत्तम महादेव हिंगने पानीपत की रणभूमि से आए थे और बनावले के गुमाश्ता (जिनकी स्थानीय पोद्दारी थी) के घर रहते थे। जैसे ही गुमाश्ता को मेरे आने की सूचना मिली उसने हमसे अपने साथ ठहरने का आग्रह किया। मैं अपनी पत्नी के साथ वहाँ पूरे महीने भर रहा। मैंने अनुभव किया कि मेरे अत्यधिक आयास के कारण मेरी क्षुधा अत्यधिक बढ़ गई है और यहाँ न तो अच्छे वस्त्रों का अभाव था न स्वादिष्ट भोजन का, मैंने अपनी बेचारी माँ के सम्बन्ध मे हर प्रकार से पूछ-ताछ की किन्तु उनके सम्बन्ध मे मुझे जो कुछ भी जानकारी मिल सकी वह अपने खिदमतगार से ही मिली। उसने कहा कि जब वे अपने घोडे पर सवार थीं तभी वे काट डाली गई और उसी क्षण उनकी मृत्यु हो गई। उनके भवितव्य का केवल यही विवरण मुझ प्राप्त हो सका। अपने साथ घोडों और पालकी का प्रबंध करके मैं धौलपुर के मार्ग से ग्वालियर गया। यहाँ रणभूमि से जो सेना बच निकली थी, उसका अधिकांश मेरे आगमन के पूर्व ही आ गया था। आने वालों मे पार्वती बाई (सदाशिवराव भाऊ की पत्नी) नाना पुरन्दरे, मल्हारजी होलकर आदि थे। इस समय मेरी अत्यन्त बलवती आकांक्षा यही थी कि सन्यास लेकर मैं स्थायी रूप से बनारस में रहूँ। सार्वजनिक जीवन के सुख का पर्याप्त अनुभव हो ही चुका था। किन्तु प्रारब्ध के लेख का विरोध करना व्यर्थ है। और सर्वप्रथम मुझे "देश" जाने को बाध्य हुआ जिससे मैं अपने सम्बन्धियों के बीच अपनी माँ का प्रतिनिधि सस्कार कर सकूँ और फिर जैसी परिस्थितियाँ हों, उन्हीं के अनुसार कार्य करूँ। मैं चिन्तन करने लगा कि यदि मैं बनारस चला गया और अपने परिचितों का परित्याग कर दिया तो मुझ पर क्या बीतेगी। इस भाँति मैंने ग्वालियर छोड़ दिया और सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

दूसरे दिन मेरा (प्रदोष) उपवास था और इसलिए कि उस दिन बाजीराव साहब की मृत्य-जयन्ती (१० मई) थी, मुझ उस रोज भोजन का निमंत्रण मिला। उपवास का दिन होने के कारण मैं उनसे क्षमा माँगने के लिए विवश हुआ। श्रीमंत ने अपने साथ चलने का आग्रह किया। मैंने कुल-पुरोहित से इस सम्बन्ध में कहा किन्तु मैंने देखा कि यदि मैं साथ नहीं गया तो श्रीमंत को बुरा लगेगा। जब भोजन परोसा गया तो श्रीमंत ने अपने साथ एक ओर तो महामान्य माधवराव को बिठलाया और दूसरी ओर मुझे। जब अपनी नवीन वधू के निर्देशन में स्त्रियाँ भोजन की तश्तरियाँ सुसज्जित कर रही थीं वे बराबर अपनी नवीन वधू की अवस्था का परिष्करण करते जाते थे और भोजन के दरम्यान उन्होंने उससे मेरे लिए कुछ तश्तरियाँ परोसवाई जैसे मैं भी परिवार का एक सदस्य होऊँ। उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी से भोजन परोसवाया और इस भाँति उन्हें परोसने की विधि का एक प्रकार से प्रशिक्षण दिया। मेरे लिए तो इसका यही अर्थ था जैसे एक वात्सल्यमयी माँ अपने बच्चे को प्रेम से भोजन करावे।

जब उन्होंने टोंक से प्रस्थान किया तो मैंने कुछ दिनों के लिए वहीं रहने की आज्ञा माँगी जिससे पिछले देखे हुए भयानक दृश्यों और मेरे द्वारा सहे गये आघातों से मेरा मन मुक्त होकर संतुलन प्राप्त कर सके। उन्होंने मुझे अनुमति प्रदान की। श्रीमन्त पूना चले गए किन्तु उनके मन में भयानक यंत्रणा थी। परिणामतः उनकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व मुझे शीघ्रातिशीघ्र पूना आने का आदेश मिला। मैंने तुरन्त प्रस्थान किया और परनेर तक पहुँचा ही था जब मुझे उनकी मृत्यु का समाचार मिला। (उनका शरीर पहले से ही यात्रा में अत्यन्त कृश हो गया था। इसलिए जैसे ही श्रीमंत पूना पहुँचे कि मुझे पत्र मिला जिसमें लिखा था कि "अंतिम क्षण सन्निकट है। शीघ्र ही आओ।" मैंने भी विचार किया कि श्रीमंत के अंतिम क्षणों में मुझे श्रीमंत के समीप ही रहना चाहिए क्योंकि मैं अपने शरीर तक के लिए उनका ऋणी जो उन्हीं के पालन और संरक्षण में बड़ा हुआ है।)

मुझे महामान्य दादा साहव की ओर से भी एक पत्र मिला जिसमें किन्ही भी परिस्थितियों में मुझे तुरन्त आने को लिखा था और अन्त में मैं पूना पहुँचा। श्रीमंत की मृत्यु की सूचना से मैं वहुत व्यथित हुआ जो पार्वती स्थान में हुई (२४ जून १७६१) किन्तु महामान्य दादा साहव ने वड़े सम्मान से मेरा स्वागत किया। वे शीघ्र ही (२१ जुलाई १७६१) महामान्य माधवराव साहव को अभिषेक-सज्जा के लिए सतारा ले गए और मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दी। वे इसके लिए भी चिन्तित थे कि जब राजा साहव वस्त्र भेंट करें तो मैं उनके साथ रहूँ। किन्तु मैंने यह कहकर क्षमा माँगी कि महामान्य ही मेरे निकटतम अधिपति हैं और मैं राजा से परिचय नहीं प्राप्त करना चाहता।

अभिषेक के अन्तर माधवराव साहव को विदा की अनुमति मिलने पर हम लोग अपने घर की ओर लौटे और पूना आ गए·········।

दूसरे दिन महामान्य ने नीरा नदी पार की लेकिन उस दिन मैं सिरिओल में ही रहा और नदी में वाढ़ आने के कारण मैं नाव द्वारा जाने को वाध्य हुआ लेकिन प्रवाह के वेग के कारण हम लोग नीचे की ओर वहने लगे। मल्लाहों ने कह दिया कि वे कुछ नहीं कर सकते। हम लोग वहते-वहते कुछ चट्टानों के समीप आए जिनसे टकरा कर कुछ ही क्षणों में चूर-चूर हो जाते। मैंने सहायता के लिए परमात्मा से प्रार्थना की। मल्लाहों में से दो को इतना साहस हुआ हुआ कि वे नाव में से कूद पड़े और किनारों पर पैर जमाने के कारण वे नाव को तट तक खींच लाए जिससे हम सभों की रक्षा हो।

यह दैवी परिस्थिति परम पालक भगवान विष्णु के अनुग्रह और हस्तक्षेप के कारण ही संभव हो सकी।

इसके अनन्तर मैं पूना चला गया और कुछ समय वाद महामान्य का मुझे यह आदेश मिला कि मैं अपने पद फड़नवीस का कार्य-निर्वाह करूँ।

---

# परिशिष्ट ख

## मराठी कविता का अर्थ

पृष्ठ १७

धर्मासाठीं ... ... ... ... ... आपलें ।

हम लोगों को धर्म के लिए मर जाना चाहिए। मरते समय दूसरों को भी जीवित नहीं छोड़ना चाहिए। दूसरों को मारते हुए हमें अपना राज्य ले लेना चाहिए।

पृष्ठ १८

आहे तितुके ... ... ... ... ... तिकडे ।

जो कुछ भी हमारे पास है, उसकी हमें रक्षा करनी चाहिए। अपने परिश्रम से उसकी वृद्धि करनी चाहिए। जहाँ-तहाँ सर्वत्र महाराष्ट्र राज्य की स्थापना करनी चाहिए।

पृष्ठ ३६

शरण आले ... . ... ... ... अजामिला ।

शरणागत के दोष आप नहीं देखते। इतना ही आपका श्रृंगार है। त्रिभुवनपति होकर आप उदारमना हैं। आपको दीन-दुखियों की चिन्ता है। आपने ही गजेन्द्र और गणिका की लाज रक्खी और द्विज अजामिल का उद्धार किया।

पृष्ठ ४२

तुका म्हणे ... ... . . ... ... आपणासी ।

तुकाराम कहते हैं कि मैं अपने मन से ही बातचीत करता हूं। उसके अभंगों में स्वयं के लिए स्वयं के मध्य में वाद-विवाद है।

मुझे महामान्य दादा साहब की ओर से भी एक पत्र मिला जिसमें किन्हीं भी परिस्थितियों में मुझे तुरन्त आने को लिखा था और अन्त में मैं पूना पहुँचा। श्रीमंत की मृत्यु की सूचना से मैं बहुत व्यथित हुआ जो पार्वती स्थान में हुई (२४ जून १७६१) किन्तु महामान्य दादा साहब ने बड़े सम्मान से मेरा स्वागत किया। वे शीघ्र ही (२१ जुलाई १७६१) महामान्य माधवराव साहब को अभिषेक-सज्जा के लिए सतारा ले गए और मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दी। वे इसके लिए भी चिन्तित थे कि जब राजा साहब वस्त्र भेंट करें तो मैं उनके साथ रहूँ। किन्तु मैंने यह कहकर क्षमा माँगी कि महामान्य ही मेरे निकटतम अधिपति हैं और मैं राजा से परिचय नहीं प्राप्त करना चाहता।

अभिषेक के अन्तर माधवराव साहब को विदा की अनुमति मिलने पर हम लोग अपने घर की ओर लौटे और पूना आ गए.........।

दूसरे दिन महामान्य ने नीरा नदी पार की लेकिन उस दिन मैं सिरिओल में ही रहा और नदी में बाढ़ आने के कारण मैं नाव द्वारा जाने को बाध्य हुआ लेकिन प्रवाह के वेग के कारण हम लोग नीचे की ओर बहने लगे। मल्लाहों ने कह दिया कि वे कुछ नहीं कर सकते। हम लोग बहते-बहते कुछ चट्टानों के समीप आए जिनसे टकरा कर कुछ ही क्षणों में चूर-चूर हो जाते। मैंने सहा के लिए परमात्मा से प्रार्थना की। मल्लाहों में से दो को इतना साहस हु कि वे नाव में से कूद पड़े और किनारों पर पैर जमाने के कारण वे तट तक खींच लाए जिससे हम सभों की रक्षा हो।

यह दैवी परिस्थिति परम पालक भगवान विष्णु के अनुग्रह औ के कारण ही संभव हो सकी।

इसके अनन्तर मैं पूना चला गया और कुछ समय बाद महामा यह आदेश मिला कि मैं अपने पद फड़नवीस का कार्य-निर्वाह करूँ